तत्त्वार्थसूत्र

(रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)

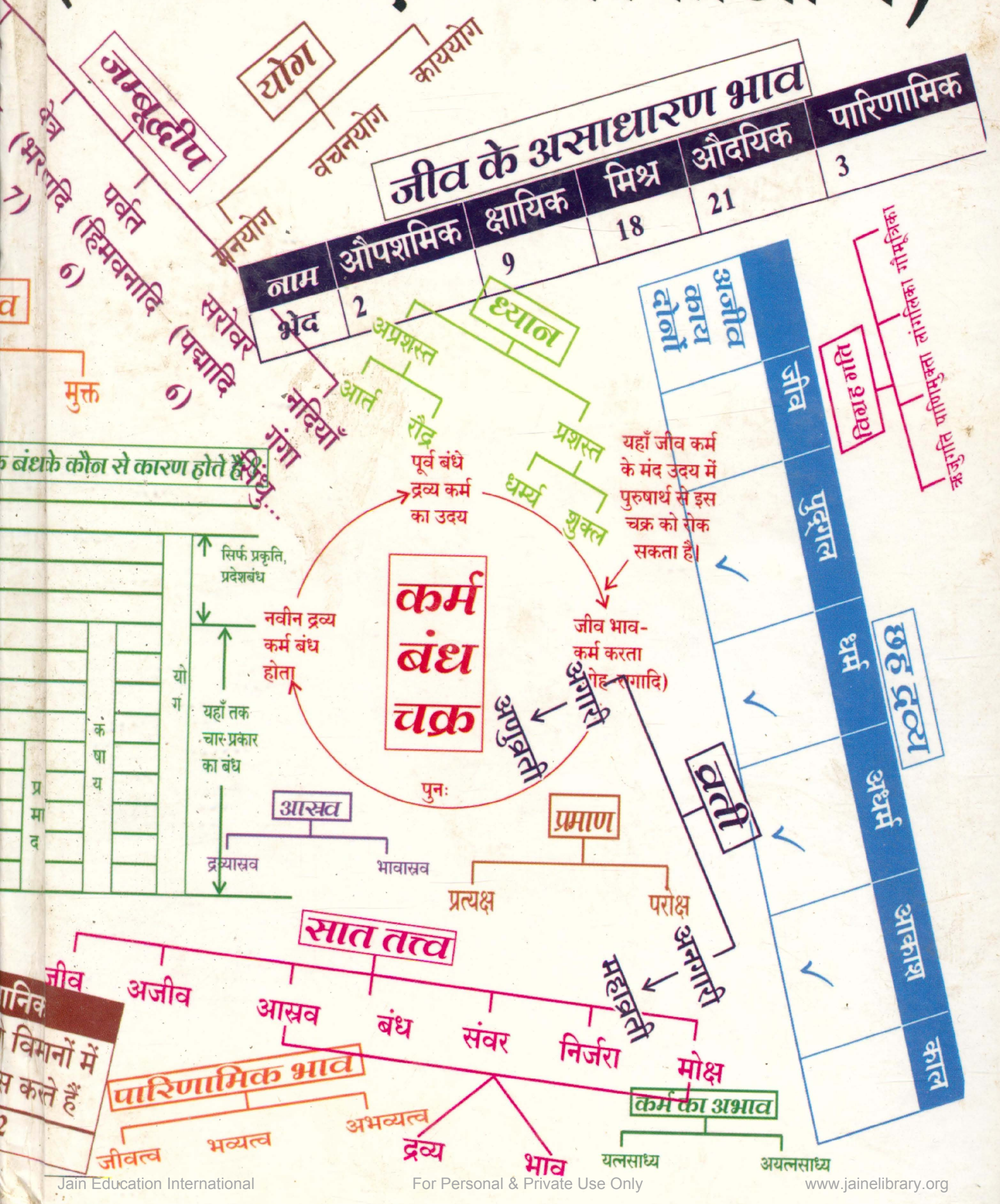

Jain Education International   For Personal & Private Use Only   www.jainelibrary.org

जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर.
(हिंदी विभाग - पुष्प ५८)

ॐ

आचार्य उमास्वामी कृत

तत्त्वार्थसूत्र

(रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)

Tattvartha-Sutra in Charts & Tables

लेखिका
श्रीमती पूजा-प्रकाश छाबड़ा

-प्रकाशक-
जैन संस्कृति संरक्षक संघ
(जीवराज जैन ग्रन्थमाला)
टी.पी. 4, प्लॉट नं. 56/10, बुधवार पेठ, जूना पुणे नाका, सोलापुर-2
फोन: 0217-2320007, मो. 09421040022

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकाशक :- श्री अरविंद रावजी दोशी,
अध्यक्ष,जैन संस्कृति संरक्षक संघ, सोलापुर -2.

प्रथम संस्करण :	1000	18 /10/2009
द्वितीय संस्करण :	3000	16 /05/2010
तृतीय संस्करण :	4000	14 /12/2010

वीरसंवत् - 2537

अर्थ सहयोग :

●शक्कर बाई माणक्चंद पारमार्थिक न्यास ,इन्दौर	35000/-
●श्रीमती किरण अशोककुमार जैन 'अरिहंत',इन्दौर	30000/-
●श्रीमती मीना सुनील जैन 'अरिहंत',इन्दौर	25000/-
●श्रीमती वंदना नरेश जैन, लन्दन, यू.के.	10000/-

प्राप्ति स्थान : ● श्रीमान् विमलचन्द छाबड़ा
53, मल्हारगंज, मेनरोड, इन्दौर
फोनः 0731-2410880, मो.09753414796
● जीवराज जैन ग्रंथमाला, सोलापुर.

लागत मूल्य : ५५ रुपए
न्यौछावर राशि : ३० रुपए

मुद्रण स्थल : चिंतामणी प्रिंटींग प्रेस
पुणे.

(सर्वाधिकार सुरक्षित)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रस्तावना

बाल ब्र. पण्डित श्री रतनलालजी शास्त्री
इन्द्र भवन, तुकोगंज, इन्दौर

श्री तत्त्वार्थसूत्रजी अपरनाम मोक्षशास्त्रजी वर्तमान में द्वादशांग का सार है। पूर्ववर्ती एवं उत्तरवर्ती आचार्य भगवन्तों की परम्पराओं अर्थात् दोनों श्रुतस्कन्ध परम्पराओं का संगम यानि प्रयाग है। यह ग्रंथ चारों अनुयोगों का नवनीत है। इस ग्रन्थ का एक-एक सूत्र बीजबुद्धि ऋद्धि के समान है। हर एक सूत्र अनेकान्तरूप है। व्याकरण, न्याय, कोष, सिद्धान्त की अपेक्षा आदि से अंत तक अविरोध रूप से है। इस ग्रंथ पर अनेक आचार्य भगवन्तों व विद्वज्जनों की टीकाएँ व अनुवाद विद्यमान हैं। 'अल्पबुद्धि भव्यात्माओं को सहज रूप से तत्त्वार्थसूत्र ग्रंथ आत्मसात् हो जाए' इस पवित्र भावना से प्रेरित होकर एवं अनेकानेक भव्यात्माओं के अतीव आग्रह से श्रीमती पूजाजी एवं प्रकाशजी छाबड़ा (जैन) ने बहुत ही लगन व परिश्रम पूर्वक 'तत्त्वार्थसूत्र (रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)' को प्रकाशित कराया है। जिसकी सर्वत्र सराहना हुई है तथा तृतीय संस्करण प्रकाशित करना अनिवार्य हो गया है।

लेखिका श्रीमती पूजा छाबड़ा एवं उनके पति श्री प्रकाश छाबड़ा में ज्ञान एवं वैराग्य का अद्भुत संयोग है। श्री प्रकाश छाबड़ा ने अमेरिका में मास्टर्स ऑफ कम्प्यूटर साइंस की उपाधि प्राप्त कर विश्व की सर्वोच्च कम्पनी 'माइक्रोसॉफ्ट कॉरपोरेशन, अमेरिका' में सॉफ्टवेयर इंजीनियर के रूप में कार्य किया। श्रीमती पूजा छाबड़ा ने भी अमेरिका में सी. पी. ए. (चार्टर्ड अकाउंटेण्ट के समकक्ष) की उपाधि प्राप्त कर अमेरिका में प्रोफेशनल अकाउंटेण्ट के पद पर कार्य किया। सात वर्षों के अमेरिका प्रवास में भी आपका धार्मिक अध्ययन व अध्यापन चलता रहा।

आत्मकल्याण की भावना से प्रेरित होकर दोनों अमेरिका व लाखों की नौकरी छोड़कर मात्र 31 व 28 वर्ष की अवस्था में निवृत्त जीवन जीने का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संकल्प कर भारत वापस आ गए। आप यहाँ अत्यन्त सादगीमय व भौतिक साधनों से विरत होकर एक आदर्श श्रावक का जीवन यापन कर रहे हैं एवं अनन्त संसार के अभाव के लिए ही अपना समग्र पुरुषार्थ लगाकर आगे बढ़ रहे हैं। अपने पूर्ण समय में आपने गोम्मटसारजी जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड, लब्धिसारजी, क्षपणासारजी, त्रिलोकसारजी, पद्मपुराण, हरिवंशपुराण, अनगार धर्मामृतजी, समयसारजी, प्रवचनसारजी, सर्वार्थसिद्धिजी आदि चारों अनुयोगों के अनेकानेक ग्रंथराजों का क्रमिक एवं गूढ़ अध्ययन किया एवं अध्ययन के साथ-साथ शास्त्र प्रवचन, धार्मिक कक्षाओं में अध्यापन, नई तकनीक (प्रोजेक्टर/कम्प्यूटर) के माध्यम से करणानुयोग के विषय को अत्यंत सरलता से प्रस्तुत कर रहे हैं।

इनके लघुभ्राता श्री विकास-सारिका छाबड़ा भी मात्र 27 वर्ष की उम्र में माइक्रोसॉफ्ट, अमेरिका की नौकरी छोड़कर निवृत्तिमय धार्मिक मार्ग पर उक्त प्रकार से ही चल रहे हैं। पूजा की माताजी श्रीमती जयश्री टोंग्या का भी जीवन धर्म से ओत-प्रोत है। आपके संस्कार पुत्री में परिलक्षित हो रहे हैं।

दोनों प्रकाश एवं पूजा प्रचार-प्रसार से दूर मात्र स्व-पर कल्याण हेतु ही इस मार्ग पर अग्रसर हैं। मेरी मंगल कामना है कि आप सदैव उत्तरोत्तर मोक्षमार्ग में वृद्धि करें । अलमस्तु।

- रतनलाल जैन

27/04/2010 इन्द्र भवन, तुकोगंज, इन्दौर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राक्कथन

आचार्य उमास्वामी कृत तत्त्वार्थसूत्र (मोक्षशास्त्र) के रेखाचित्रों एवं तालिकाओं को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने के विचार का उद्गम तत्त्वार्थ सूत्र वर्ष के अन्तर्गत कक्षा में पढ़ाने के फलस्वरूप हुआ। वर्तमान में नई पीढ़ी को चार्ट के माध्यम से विषयवस्तु का ग्रहण सरलता से हो जाता है एवं धारणा ज्ञान में शीघ्रता से आ जाता है। इसी बात को ध्यान में रखकर तत्त्वार्थ सूत्र पढ़ाने हेतु ही ये चार्ट तैयार किए गए थे। विद्यार्थियों के लिए अत्यन्त सरल, संक्षिप्त व विशेष उपयोगी जानकर व इसकी माँग को देखते हुए इसे पुस्तकाकार रूप में प्रस्तुत किया गया था। प्रौढ़ पाठकों को पुस्तक सन्दर्भ के लिए भी उपयोगी साबित हुई है। प्रथम एवं द्वितीय संस्करण के हाथों-हाथ समाप्त होने व अधिक माँग होने से इसका तृतीय संस्करण प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस पुस्तक में सूत्र एवं सूत्रार्थ सर्वार्थसिद्धि ग्रन्थ से लिये गए है। इसके साथ ही पूर्वाचार्यों के कथन को ही रेखाचित्रों के माध्यम से तथा उन्हीं के द्वारा बताए गए लक्षणों को संक्षेप में प्रस्तुत किया है। ***सूत्रों के क्रम को चार्ट आदि के आग्रह से पूर्ववत् आगे-पीछे रखा गया है।*** इन्हें तैयार करने में जिन ग्रन्थों का आधार लिया गया है, उनमें तत्त्वार्थसूत्र टीकाएँ सर्वार्थसिद्धि, राजवार्तिक, अर्थप्रकाशिका तथा प्रवचनसार, त्रिलोकसार एवं गोम्मटसार जीवकाण्ड-कर्मकाण्ड, पुरुषार्थसिद्ध्युपाय, वृहद द्रव्य संग्रह प्रमुख हैं। ***"को न विमुह्यति शास्त्रसमुद्रे"*** के अनुसार पुस्तक में त्रुटियाँ होना सम्भव है। अतः सुधी पाठकों से अनुरोध है कि त्रुटियाँ सुधारकर पढ़ें व मुझे भी अवगत करावें, ताकि आगामी संस्करण में उनकी पुनरावृत्ति न होवे।

प्रस्तुत पुस्तक को लिखने की प्रेरणा तथा आद्योपांत पूर्ण सहयोग के लिए मैं अपने पति श्री प्रकाश जी छाबड़ा के प्रति विशेष कृतज्ञता ज्ञापित करती हूँ। मैं आदरणीय बा. ब्र. पं. श्री रतनलाल जी शास्त्री की विशेष आभारी हूँ, जिनके सान्निध्य में जैन सिद्धान्त प्रवेशिका से लगाकर गोम्मटसार जीवकाण्ड-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्मकाण्ड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार आदि करणानुयोग के अनेक ग्रन्थों का अभ्यास किया और प्रस्तुत पुस्तक लिखने में समर्थ हुई।

श्रीमती पूजा-प्रकाश छाबड़ा
53, मल्हारगंज, मेन रोड, इन्दौर (म.प्र.)
फोन नं. 99260-40137

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

रेखाचित्र एवं तालिकाओं की सूची

सम्बन्धित सूत्र	विषय	पृष्ठ संख्या
	आचार्य उमास्वामी का परिचय	1
	तत्त्वार्थ सूत्र	1
	सूत्र की विशेषता	2
	ग्रन्थ के नाम की सार्थकता	2
	टीकाएँ	3
	मंगलाचरण	3
	मंगलाचरण की विशेषता	4
	प्रथम अध्याय	
	प्रथम अध्याय विषय-वस्तु	4
1	मोक्षमार्ग क्या है?	5
2	सम्यग्दर्शन क्या है?	5
3	सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के हेतु	6
4	सात तत्त्व	6
5	निक्षेप	7
	पदार्थों को जानने के उपाय	7
6	-संक्षिप्त रुचि शिष्यों के लिए	7
7	-मध्यम रुचि शिष्यों के लिए	8
8	-विस्तार रुचि शिष्यों के लिए	8
9-12	प्रमाण (सम्यग्ज्ञान) के भेद	9
	ज्ञान सम्बन्धी प्रयोजनभूत विचार	10
13	मतिज्ञान के अन्य नाम	10
14	मतिज्ञान की उत्पत्ति के निमित्त	10

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

15	मतिज्ञान के भेद	11
16-17	पदार्थों के 12 भेद	11
18-19	मतिज्ञान का विषय व 336 भेद	12
	ज्ञान की उत्पत्ति का क्रम	12
20	श्रुतज्ञान के भेद	13
21-22	अवधिज्ञान के भेद	13
22	गुणप्रत्यय अवधिज्ञान के भेद	14
	अन्य प्रकार से अवधिज्ञान के भेद	14
23	मनःपर्ययज्ञान के भेद	14
24	ऋजुमति-विपुलमति मनःपर्ययज्ञान में अंतर	15
25	अवधिज्ञान-मनःपर्ययज्ञान में अंतर	15
26-29	5 ज्ञानों का विषय	16
30	एक जीव के एक साथ कितने ज्ञान हो सकते हैं	17
31-32	मिथ्याज्ञान (कुज्ञान) के भेद	18
33	नय के भेद	19
	द्वितीय अध्याय	
	द्वितीय अध्याय विषय-वस्तु	20
1-2	जीव के असाधारण भाव	21
	कर्म की प्रकृतियाँ	22
3	औपशमिक भाव के भेद	23
4	क्षायिक भाव के भेद	23
5	क्षायोपशमिक भाव के भेद	24
	क्षयोपशम का स्वरूप	24
6	औदयिक भाव के भेद	25
7	पारिणामिक भाव के भेद	25
	सम्यक्त्व आदि गुणों में सम्भावित भाव	26

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	लक्षणाभास के भेद	26
8	लक्षण के भेद	27
8-9	उपयोग के भेद	27
	उपयोग (अध्यात्म भाषा से 3 प्रकार का)	27
10-11	जीव के भेद	28
12-14, 22-23	संसारी जीवों के भेद	29
	पाँच स्थावरों के प्रत्येक के 4-4 भेद	29
15	पाँच इन्द्रियाँ	30
16-18	इन्द्रिय के भेद	30
19-21	इन्द्रियों और मन के विषय व आकार	31
24	संज्ञा शब्द के अनेक अर्थ	31
25,29-30	विग्रहगति	32
26-28	अनुश्रेणि गति	33
31,33-35	जन्म के भेद	33
	किन जीवों के नियम से कौन-सा जन्म होता है	34
	कर्मभूमिया पंचेन्द्रिय असैनी व सैनी तिर्यंच के जन्म	34
32	योनि के भेद	35
	किस योनि में कौन जीव जन्म लेता है?	35
	84 लाख योनियाँ	36
39,45-46	शरीर के भेद	37
40-42	तैजस और कार्मण शरीर की विशेषता	38
43	एक साथ एक जीव के कितने शरीर होते हैं	38
44	कार्मण शरीर उपभोग रहित होता है	39
47	वैक्रियिक शरीर के प्रकार	39

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

48	तैजस शरीर के प्रकार	39
	निःसरण तैजस शरीर के प्रकार	40
49	आहारक शरीर की विशेषता	40
50-52	वेद	41
53	अनपवर्त्य आयु	41
	तृतीय अध्याय	
	तृतीय अध्याय विषय-वस्तु	42
	लोक का विस्तार	43
	त्रस नाड़ी का विस्तार	43
	अधोलोक का विस्तार	44
1	वातवलय	45
1 -2	नरकों का वर्णन	45
2	बिल	46
6	नारकियों का वर्णन	47
	नरक से निकला हुआ जीव कहाँ उत्पन्न होता है	48
	नरक से निकला जीव क्या नहीं होता है	48
3-5	नारकियों के दुःख	49
	नारकियों द्वारा परस्पर दिए जाने वाले दुःख	50
7-8	मध्य (तिर्यक्) लोक का विस्तार	51
9	जम्बूद्वीप का वर्णन	52
9	सुदर्शन मेरु	52
9	मेरु पर चार वन	52
10	जम्बूद्वीप के 7 क्षेत्र	53
11-13	जम्बूद्वीप के 6 पर्वत/कुलाचल	54

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

14-19	जम्बूद्वीप के 6 सरोवर	56
20-23	जम्बूद्वीप की 14 नदियाँ	57
24-26,32	भरतादि क्षेत्रों का विस्तार	58
27	काल चक्र परिवर्तन	59
27,29-31	काल चक्र परिवर्तन विशेषता	60
28	अवस्थित भूमियों के काल	61
33-35	अढ़ाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र/नर लोक)	62
36	मनुष्यों के भेद	62
	कुभोगभूमि मनुष्य विशेषता	63
37	ढ़ाईद्वीप में कर्मभूमियाँ एवं भोग भूमियाँ	63
38-39	मनुष्य एवं तिर्यंचों की आयु	64
	तिर्यंचों की आयु-विशेष	64
	पूर्वांग	65
	पूर्व	65
	3 प्रकार के पल्य	65
	सागर	65
	सूत्र से अन्य रचनाएँ व अन्य विषय	65
	तीर्थंकरों की गणना	66
	त्रिकाल चौबीसी	66
	तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालय	66
	मध्यलोक के 458 अकृत्रिम चैत्यालय	67
	चतुर्थ अध्याय	
	चतुर्थ अध्याय विषय-वस्तु	68
	ऊर्ध्वलोक का विस्तार	68
1,3-5, 10-12	देवों के प्रकार (निकाय)	70

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

4	देवों के 10 सामान्य भेद	70
	चार निकाय के देवों का निवास	71
2	भवनत्रिक देवों की लेश्याएँ	72
6	इन्द्रों की व्यवस्था	72
7-9	देवों में प्रवीचार (मैथुन - काम सेवन)	73
13-15	ज्योतिषी देव	74
16-17,23	वैमानिक देवों के भेद	74
18-19	वैमानिक देवों के विमानों का वर्णन	76
22	वैमानिक देवों का वर्णन	77
	वैमानिक देवों की देवांगनाओं का वर्णन	78
29-34,42	वैमानिक देवों की आयु आदि	79
20	वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर अधिकता	80
21	वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर हीनता	80
24-25	लौकान्तिक देव	81
26	दो भवावतारी	82
	एक भवावतारी	82
27	तिर्यंच कौन हैं?	82
	कौन तिर्यंच मरकर किस स्वर्ग में उत्पन्न होता है?	83
	कौन मनुष्य मरकर किस स्वर्ग में उत्पन्न होता है?	84
	कौन देव मरकर कहाँ उत्पन्न होते हैं?	85
	त्रेसठ शलाका पुरुषों सम्बन्धी विशेषता	85
28,37-41	भवनत्रिक देवों की आयु आदि	86
35-36	नारकियों की आयु	87
	पंचम अध्याय	
	पंचम अध्याय विषय-वस्तु	88

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1-7	छह द्रव्य	89
8-11	द्रव्यों के प्रदेश	91
12-15	द्रव्यों का लोक में अवगाह	92
	संख्यामान-संख्यात, असंख्यात, अनंत	92
16	जीव और पुद्‌गल के आकाश के अल्प प्रदेशों में रहने का हेतु	93
17	धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार - मुख्य बिन्दु	93
18	आकाश का उपकार - मुख्य बिन्दु	94
19	पुद्‌गल का उपकार	94
20	पुद्‌गल का अन्य प्रकार से उपकार	95
21	जीव का उपकार	95
22	काल का उपकार	96
17-22	द्रव्यों का उपकार - सार	96
23-24	पुद्‌गल का स्वरूप, गुण और पर्यायें	97
24	(1) शब्द	97
24	(2) बंध	98
24	(3) सूक्ष्म	98
24	(4) स्थूल	98
24	(5) संस्थान (आकार)	98
24	(6) भेद (टुकड़े - भंग होना)	99
24	(7) तम (अंधकार)	99
24	(8) छाया (प्रकाश को ढकने वाली)	99
24	(9) आतप	99
24	(10) उद्योत	99
25	पुद्‌गल के भेद (जाति अपेक्षा)	100
	परमाणु में एक साथ कितनी पर्यायें हो सकती हैं	100

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	पुद्गल के अन्य प्रकार से भेद	101
26-28	स्कन्धादि की उत्पत्ति के कारण	101
29-30	द्रव्य का लक्षण	102
	द्रव्य अगर उत्पाद स्वरूप, व्यय स्वरूप, ध्रौव्य स्वरूप या उत्पाद-व्यय रूप ही हो?	102
	द्रव्य-भेद से और अभेद से	103
	सत्ता के भेद	103
31	नित्य का स्वरूप	103
32	स्याद्वाद शैली	104
33	बंध किनका होता है?	105
33-36	परमाणुओं का बंध	105
37	बंध होने पर क्या होता है	105
	पुद्गल बंध से जीव बंध की तुलना	106
38	द्रव्य का अन्य प्रकार से लक्षण	106
38	सामान्य-विशेष गुण	107
38	अन्य प्रकार से गुण के भेद	107
38	सामान्य गुणों का स्वरूप	108
38	पर्याय के भेद	108
39	काल भी द्रव्य है!	109
40	काल के प्रकार	109
	काल द्रव्य की सिद्धि	110
	प्रचय के भेद	110
41	गुण का लक्षण	111
42	परिणाम (भाव) का स्वरूप	111

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	षष्ठ अध्याय	
•	षष्ठ अध्याय विषय-वस्तु	112
	आस्रव के भेद	113
1	योग के भेद	113
1	निमित्त अपेक्षा योग के भेद	113
	योग गुण	113
2	आस्रव का स्वरूप	114
3	योग के निमित्त से आस्रव में भेद	114
4	स्वामी अपेक्षा आस्रव के भेद	115
5	साम्परायिक आस्रव-39 भेद	116
5	25 क्रियाएँ	117
5	5 विभिन्न क्रियाएँ	
117		
5	5 हिंसा भाव की मुख्यतारूप क्रियाएँ	117
5	5 इन्द्रियों के भोग बढ़ाने सम्बन्धी क्रियाएँ	117
5	5 धर्माचरण में दोष कारक क्रियाएँ	118
5	5 धर्म-धारण से विमुख करने वाली क्रियाएँ	118
6	आस्रव में हीनता-अधिकता के कारण	118
7	अधिकरण के प्रकार	119
8	जीव अधिकरण के भेद	119
9	अजीव अधिकरण के भेद	120
10-27	आठ कर्मों में प्रत्येक के आस्रव के कारण	121
10	ज्ञानावरण - दर्शनावरण के आस्रव के कारण	121
11	असाता वेदनीय के आस्रव के कारण	121
12	साता वेदनीय के आस्रव के कारण	122
13-14	मोहनीय के आस्रव के कारण	123

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

15-21	आयु के आस्रव के कारण	125
22-23	नामकर्म के आस्रव के कारण	126
22	योग वक्रता एवं विसंवादन में अन्तर	126
	तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारणभूत	127
24	सोलहकारण भावना	
25-26	गोत्र के आस्रव के कारण	128
-	किस जीव के कौन-से गोत्र का उदय होता है	128
27	अन्तराय के आस्रव के कारण	129
	सप्तम अध्याय	
	सप्तम अध्याय विषय-वस्तु	130
1	व्रत के भेद	131
2	व्रत के प्रकार	131
3	पाँच व्रतों की पाँच-पाँच भावनाएँ	132
4	अहिंसा व्रत की पाँच भावनाएँ	132
5	सत्य व्रत की पाँच भावनाएँ	133
6	अचौर्य व्रत की पाँच भावनाएँ	133
7	ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ	134
8	परिग्रह त्याग व्रत की पाँच भावनाएँ	134
9-10	हिंसादि से विरक्त होने की भावना	135
11	व्रती के चिन्तन योग्य अन्य भावनाएँ	136
12	व्रती को वैराग्य बढ़ाने के लिए भावनाएँ	136
13-17	पाँच पाप	137
13	हिंसा के भेद	137
13	हिंसा के अन्य प्रकार से भेद	137
13	पर जीव के घात रूप हिंसा के प्रकार	138
13	हिंसा के त्याग के लिए जानें	138
13	प्रमाद के भेद	138

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

13	प्राण के भेद	139
14	असत्य के भेद	139
16	अब्रह्म के भेद	140
17	परिग्रह के भेद	140
18	व्रती की विशेषता	141
	शल्य के भेद	141
19	व्रती के भेद	141
	गृहस्थ के व्रत	142
20	अणुव्रत के भेद	142
	7 शीलव्रत के भेद	143
	अनर्थदण्ड के भेद	143
	उपभोग-परिभोग का स्वरूप	144
	अतिथि संविभाग के योग्य सामग्री	144
22	सल्लेखना का स्वरूप	144
23	सम्यग्दर्शन के अतिचार	145
	व्रतभंग के लिए सहायक परिणाम	145
	अतिचार-अनाचार में अन्तर	146
24-29	व्रतों के पाँच-पाँच अतिचार	146
25	अहिंसाणुव्रत के अतिचार	146
26	सत्याणुव्रत के अतिचार	147
27	अचौर्याणुव्रत के अतिचार	147
28	ब्रह्मचर्याणुव्रत के अतिचार	148
29	परिग्रह परिमाणाणुव्रत के अतिचार	148
30-32	गुणव्रत के अतिचार	149
30	दिग्विरति के अतिचार	149
31	देशविरति के अतिचार	149

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

32	अनर्थदण्डविरति के अतिचार	150
33-36	शिक्षाव्रत के अतिचार	150
33	सामायिक व्रत के अतिचार	150
34	प्रोषधोपवास व्रत के अतिचार	151
35	उपभोग-परिभोग परिमाण व्रत के अतिचार	151
36	अतिथि संविभाग व्रत के अतिचार	152
37	सल्लेखना के अतिचार	152
38	दान का स्वरूप	153
39	दान के फल में विशेषता के कारण	153
39	विधि विशेष	154
	दाता के सात गुण	154
	दान के प्रकार	154
	अष्टम अध्याय	
	अष्टम अध्याय विषय-वस्तु	155
1	बंध के कारण	155
	योग के भेद	156
	किस गुणस्थान तक बंध के कौन - से कारण होते हैं?	156
2	बंध क्या है?	157
	कर्म बंध चक्र	157
	द्रव्य कर्म-भाव कर्म निमित्त-उपादान	158
3	बंध के भेद	158
	कर्म के भेद	159
4-5	प्रकृति बंध (आठ मूल कर्म)	160
	अनुजीवी प्रतिजीवी गुण	161
6	ज्ञानावरण कर्म के भेद	161
7	दर्शनावरण कर्म के भेद	162

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	दर्शन के भेद	163
	दर्शन - ज्ञान का व्यापार	163
	मनः पर्ययज्ञान की उत्पत्ति का क्रम	163
8	वेदनीय कर्म के भेद	164
	आत्मा का सुख गुण	164
9	मोहनीय कर्म के भेद	165
	कषायों के उत्कृष्ट-जघन्य स्थान के दृष्टांत	166
10	आयु कर्म के भेद	166
11	नाम कर्म के भेद	167
11	नाम कर्म की 14 पिण्ड प्रकृतियाँ	168
11	शरीर, बंधन, संघात में अन्तर	169
11	संस्थान के भेद	169
11	संहनन के भेद	169
	किस संहनन सहित मरकर जीव कहाँ जन्म ले सकता है?	170
	किस जीव के कौन-सा संहनन होता है?	170
11	नाम कर्म की 8 प्रत्येक प्रकृतियाँ	171
11	आतप, उद्योत, उष्ण नामकर्म में अन्तर	171
11	नाम कर्म के 10 जोड़े	172
11	पर्याप्ति का स्वरूप व भेद	172
11	अपर्याप्त के प्रकार	173
12	गोत्र कर्म के भेद	173
13	अंतराय कर्म के भेद	173
14-20	मूल कर्म जघन्य उत्कृष्ट स्थिति बंध व आबाधा	175
	शेष जीवों की उत्कृष्ट कर्म स्थिति बंध	176
	उत्तर प्रकृति उत्कृष्ट स्थिति बंध	176

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

21-23	अनुभाग बंध क्या है?	178
	कैसे परिणामों से कैसा रस (अनुभाग) बंध होता है?	
178		
	अनुभाग की प्रवृत्ति	
178		
	फल दान शक्ति की तारतम्यता	179
	निर्जरा के प्रकार	179
24	प्रदेश बंध	180
25-26	पुण्य-पाप प्रकृति विभाजन	180
25	पुण्य प्रकृतियाँ	181
26	पाप प्रकृतियाँ	181
	घातिया कर्म की सर्वघाति-देशघाति प्रकृतियाँ	182
	नवम अध्याय	
	नवम अध्याय विषय-वस्तु	183
1	संवर के भेद गुणस्थान का स्वरूप	184 185
	किन आस्रव के कारणों के अभाव में किन	186
	प्रकृतियों का संवर होता है?	
2	संवर के कारण	188
	निर्जरा के भेद	188
3	निर्जरा का कारण	188
4-18	संवर प्रकरण	189
4	गुप्ति के भेद	189
5	समिति के भेद	189
6	धर्म के भेद	190
7	अनुप्रेक्षा (भावना) के भेद	191
8	परीषह क्यों सहना?	192

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

10-12	कहाँ कौन - सा परीषह सम्भव है?	193
13-16	किस कर्म के उदय से कौन सा - परीषह होता है?	194
17	एक साथ एक जीव को कितने परीषह सम्भव हैं?	195
18	चारित्र के भेद	195
	परिहार विशुद्धि चारित्र की विशेषता	196
	सामायिकों में अन्तर	196
19-45	निर्जरा प्रकरण	197
	तप के भेद	197
19	बाह्य तप के भेद	198
	4 प्रकार का आहार	198
	6 प्रकार के रस	198
20-21	आभ्यंतर तप के भेद	199
22	प्रायश्चित्त तप के भेद	200
23	विनय तप के भेद	200
24	वैयावृत्त्य तप के विषय	201
	4 प्रकार का संघ	201
25	स्वाध्याय तप के भेद	202
26	व्युत्सर्ग तप के भेद	202
27	ध्यान क्या है?	202
	अंतर्मुहूर्त का स्वरूप	203
28-29	ध्यान के भेद	203
29-35	आर्त-रौद्र ध्यान में अन्तर	205
	निदान शल्य-निदान आर्तध्यान में अन्तर	205
36	धर्म्य ध्यान के भेद	206
43-44	वितर्क व वीचार का स्वरूप	207
37-42	शुक्लध्यान के भेद	208

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

45	गुणश्रेणी निर्जरा में विशेषता के 10 स्थान	209
46-47	निर्ग्रन्थ के भेद	210
47	संयम स्थान की तारतम्यता	212
	दसवाँ अध्याय	
	दसवाँ अध्याय विषय-वस्तु	213
	मोक्ष के भेद	213
1	मोक्ष के पहले केवलज्ञान की उत्पत्ति	214
2	मोक्ष होने के हेतु	214
	मोक्ष होने पर किन कर्मों का अभाव (क्षय) होता है?	215
3-4	मोक्ष होने पर किन भावों का अभाव और सद्भाव रहता है?	217
	3 प्रकार के कर्मों के नाश होने पर मोक्ष होता है	217
5-8	मोक्ष होने के बाद आत्मा ऊपर जाता है। हेतु और दृष्टांत	218
	मोक्ष होने पर सिद्धों (मुक्त जीवों) का निवास	219
	अष्टम पृथिवी - ईषत् प्राग्भार	219
	सिद्ध शिला	219
	सिद्धों का निवास - सिद्ध क्षेत्र	219
9	मुक्त जीवों में भेद नहीं	220
9	मुक्त जीवों में कथंचित् भेद	220
9	अल्प-बहुत्व (सिद्ध होने वाले जीवों की संख्या की तुलना)	222
	परिशिष्ट-1	
	सभी कर्मों के आस्रव के विशेष कारण	223
	परिशिष्ट-2 (पाठान्तर)	229
	सम्मतियाँ	231

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्त्वार्थसूत्र

आचार्य उमास्वामी

* कम से कम लिखकर अधिक से अधिक प्रसिद्धि पाने वाले आचार्य हैं।
* कुन्दकुन्द आचार्य के पट्ट शिष्य थे।
* विक्रम की प्रथम शताब्दी का अंत एवं द्वितीय का पूर्वार्ध आपका समय है।
* उमास्वाति एवं गृद्धपिच्छाचार्य भी आपके अन्य नाम हैं।
* प्राचीन जैनाचार्य अपने बारे में कुछ नहीं लिखते थे। अतएव आपके जीवन परिचय से जैन समाज अपरिचित है।

तत्त्वार्थसूत्र

* यह संस्कृत भाषा का सर्वप्रथम जैन ग्रंथ है।
* समग्र जैन समाज में प्रामाणिकता प्राप्त ग्रंथ है।
* जो महत्त्व वैदिकों में गीता, ईसाइयों में बाईबल तथा मुसलमानों में कुरान का हैं; वही जैनदर्शन में तत्त्वार्थसूत्र का है।
* जिनागम के लगभग सम्पूर्ण विषयों की "सूची" इस ग्रंथ में सूत्ररूप में उपलब्ध है। अतः इसे सूची ग्रन्थ भी कहा जा सकता है।
* इसका संकलन इतना सुसम्बद्ध एवं प्रामाणिक साबित हुआ कि यह महावीर भगवान की वाणी की तरह जैन दर्शन का आधार सिद्ध हुआ।
* सच्चे शास्त्र का उपलक्षण या प्रतिनिधि ग्रन्थ है।
* सारे भारतवर्ष के जैन परीक्षा बोर्डों के पाठ्यक्रम में और जैन विद्यालयों में निर्धारित है।
* इसमें कुल 357 सूत्र हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्र

* तत्त्वार्थसूत्र जैन साहित्य का आदि सूत्र-ग्रन्थ है।
* व्याकरण के अनुसार जो कम से कम शब्दों में पूर्ण अर्थ बता दे, उसे "**सूत्र**" कहते हैं।
* छन्द में गद्य की अपेक्षा कम शब्दों में अधिक विषय एवं सूत्र में छन्द की अपेक्षा कम से कम शब्दों में अधिक विषय समाहित होता है।
* सूत्र अर्थात् गागर में सागर भरना।
* सूत्र की रचना में आधी मात्रा बच जाने पर सूत्रकार पुत्रोत्सव समान सुख मानते हैं।
* सूत्रों का निर्माण वैज्ञानिक पद्धति से होता है।
* सूत्रों की रचना एवं क्रम युक्तिसंगत होता है।
* सूत्र = धागा, साधक, संकेत।
* जैसे सूत्र में पिरोई सुई गुमती नहीं, वैसे ही सूत्र का पाठी दुर्गति में भ्रमता नहीं है।

नाम की सार्थकता

* यह ग्रंथ **सूत्र** रूप में है, इसलिए इसका "**सूत्र**" नाम सार्थक है।
* "**तत्त्वार्थ**" नाम सार्थक है, क्योंकि इसमें **7 तत्त्वों** का वर्णन है, जो कि 10 अध्यायों में निम्न प्रकार से है :-

अध्याय	तत्त्व
प्रारंभ के चार अध्याय	जीव तत्त्व
पाँचवाँ अध्याय	अजीव तत्त्व
छठवाँ एवं सातवाँ अध्याय	आस्रव तत्त्व
आठवाँ अध्याय	बंध तत्त्व
नौवाँ अध्याय	संवर व निर्जरा तत्त्व
दसवाँ अध्याय	मोक्ष तत्त्व

* अपर नाम **मोक्षशास्त्र,** क्योंकि प्रारंभ मोक्षमार्ग से एवं अंत में भी मोक्ष का वर्णन है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

टीकाएँ

* दिगम्बर एवं श्वेताम्बर दोनों सम्प्रदायों में संस्कृत एवं हिन्दी की टीकाएँ और भाष्य उपलब्ध हैं। कुछ टीकाओं के नाम निम्नलिखित हैं :-

आचार्य का नाम	टीका का नाम
आचार्य पूज्यपाद	सर्वार्थसिद्धि
आचार्य अकलंकदेव	तत्त्वार्थ राजवार्तिक
आचार्य विद्यानन्दि	तत्त्वार्थ श्लोकवार्तिक
आचार्य समन्तभद्र	गंधहस्ति महाभाष्य (अप्राप्य)
आचार्य श्रुतसागर	तत्त्वार्थवृत्ति
* ढूँढारी भाषा के प्राचीन विद्वान -	
पं. सदासुखदासजी कासलीवाल	अर्थप्रकाशिका
* आधुनिक टीकाकार विद्वान -	
पं. फूलचंदजी सिद्धान्ताचार्य	
पं. कैलाशचन्दजी सिद्धान्ताचार्य	
पं. पन्नालालजी साहित्याचार्य	
पं. रामजी भाई दोशी आदि	

मंगलाचरण

मोक्षमार्गस्य नेतारं भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां वन्दे तद्गुणलब्धये।।

(भेत्तारं कर्मभूभृताम्)(ज्ञातारं विश्वतत्त्वानाम्)(मोक्षमार्गस्य नेतारम्)

भेत्तारं कर्मभूभृताम्	ज्ञातारं विश्वतत्त्वानाम्	मोक्षमार्गस्य नेतारम्
कर्मरूपी पर्वतों के	सम्पूर्ण तत्त्वों को	मोक्षमार्ग के
↓	↓	↓
भेदने वाले	जानने वाले	नेता
↓	↓	↓
वीतरागी	सर्वज्ञ	हितोपदेशी

को नमस्कार किया
↓
उनके जैसे गुणों की प्राप्ति के लिए

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भावार्थ - जो मोक्षमार्ग के नेता हैं, कर्मरूपी पर्वतों के भेदनेवाले हैं और विश्वतत्त्वों के ज्ञाता हैं, उनकी मैं उन समान गुणों की प्राप्ति के लिए द्रव्य और भाव उभयरूप से वन्दना करता हूँ।

मंगलाचरण की विशेषता

तत्त्वार्थसूत्र के मंगलाचरण पर :-

* आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने 115 श्लोकों में देवागम स्तोत्र बनाया, जो कि गंधहस्ति महाभाष्य (तत्त्वार्थसूत्र टीका) का मंगलाचरण है।
* देवागम स्तोत्र पर 800 श्लोकों में अष्टशती भट्ट अकलंक देव ने बनायी।
* अष्टशती पर 8000 श्लोकों में अष्टसहस्री आचार्य विद्यानंदि ने बनायी।

प्रथमअध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
मोक्षमार्ग का स्वरूप	1	1	5
सम्यग्दर्शन	2-4	3	5-6
पदार्थों के जानने के उपाय	5-8	4	7-8
सम्यग्ज्ञान-प्रमाण	9-12	4	9
मतिज्ञान	13-19	7	10-12
श्रुतज्ञान	20	1	13
अवधिज्ञान और मनःपर्यय ज्ञान	21-25	5	13-15
पाँच ज्ञानों का विषय	26-29	4	16
एक साथ कितने ज्ञान सम्भव	30	1	17
मिथ्याज्ञान	31-32	2	18
नय	33	1	19
	कुल	33	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।।1।।

सूत्रार्थ - सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र - ये तीनों मिलकर मोक्ष का मार्ग है।।1।।

मोक्षमार्ग क्या है

	सम्यग्दर्शन	सम्यग्ज्ञान	सम्यक्चारित्र
व्यवहार स्वरूप	सात तत्त्वों का सही श्रद्धान	सात तत्त्वों का सही ज्ञान	अशुभ से निवृत्ति, शुभ में प्रवृत्ति
निश्चय स्वरूप	परद्रव्यों से भिन्न आत्मा की रुचि	परद्रव्यों से भिन्न आत्मा का जानना	परद्रव्यों से भिन्न आत्मा में लीनता

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनम्।।2।।

सूत्रार्थ - अपने-अपने स्वरूप के अनुसार पदार्थों का जो श्रद्धान होता है, वह सम्यग्दर्शन है।।2।।

सम्यग्दर्शन

↓

तत्त्व + अर्थ + श्रद्धान

↓

भाव + भाववान (पदार्थ) + प्रतीति

तन्निसर्गादधिगमाद्वा।।3।।

सूत्रार्थ - वह (सम्यग्दर्शन) निसर्ग से और अधिगम से उत्पन्न होता है।।3।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति के हेतु

निसर्गज
* स्वभाव से
उदाहरण * काँटे की नोंक
(काँटे की नोक स्वाभाविक होती है)

अधिगमज
* पर के उपदेश से
* बाण की धार
(बाण की धार को बनाने के लिए किसी की आवश्यकता होती है)

जीवाजीवास्रवबंधसंवरनिर्जरामोक्षास्तत्त्वम्।।4।।

सूत्रार्थ - जीव, अजीव,आस्रव, बन्ध,संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तत्त्व हैं।।4।।

सात तत्त्व

जीव अजीव आस्रव बंध संवर निर्जरा मोक्ष

(आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष →) द्रव्य भाव

द्रव्य

कर्मों —
- का आना - आस्रव
- का आत्मा से सम्बन्ध होना - बन्ध
- का आना रुकना - संवर
- का एकदेश खिरना - निर्जरा
- का सम्पूर्ण नाश - मोक्ष

भाव

शुभ - अशुभ भावों —
- की उत्पत्ति - आस्रव
- का बने रहना - बन्ध

शुद्ध भावों की —
- उत्पत्ति - संवर
- वृद्धि - निर्जरा
- पूर्णता - मोक्ष

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नामस्थापनाद्रव्यभावतस्तन्न्यासः ||5||

सूत्रार्थ - नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव रूप से उनका अर्थात् सम्यग्दर्शन आदि और जीव आदि का न्यास अर्थात् निक्षेप होता है||5||

निक्षेप

(लोक अथवा आगम में शब्द व्यवहार करने की पद्धति)

	नाम	स्थापना	द्रव्य	भाव
स्वरूप	जिस पदार्थ में जो गुण नहीं, उसको उस नाम से कहना	"वह यह है" इस प्रकार बुद्धि से अभेद करना	जो गुणों को प्राप्त हुआ था अथवा गुणों को प्राप्त होगा	वर्तमान पर्याय संयुक्त वस्तु
उदाहरण	वीरता न होने पर भी महावीर नाम रखना	महावीर की प्रतिमा को महावीर कहना	राजकुमार वर्द्धमान को 'महावीर भगवान' कहना	अनंत चतुष्टय युक्त को 'भगवान महावीर' कहना

प्रमाणनयैरधिगमः ||6||

सूत्रार्थ - प्रमाण और नयों से पदार्थों का ज्ञान होता है||6||

संक्षिप्त रुचि शिष्यों के लिए -

पदार्थों को जानने के उपाय

प्रमाण	नय
* सच्चा ज्ञान	* श्रुत ज्ञान का अवयव (अंश)
* पदार्थ को सर्वदेश ग्रहण करता है।	* पदार्थ का एकदेश ग्रहण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्देशस्वामित्वसाधनाधिकरणस्थितिविधानतः।।7।।

सूत्रार्थ - निर्देश, स्वामित्व, साधन, अधिकरण, स्थिति और विधान से सम्यग्दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है।।7।।

मध्यम रुचि शिष्यों के लिए -

पदार्थों को जानने के उपाय

निर्देश	स्वामी	साधन	अधिकरण	स्थिति	विधान
(स्वरूप)	(मालिक)	(उत्पत्ति का कारण)	(आधार)	(काल)	(भेद)

सत्संख्याक्षेत्रस्पर्शनकालान्तरभावाल्पबहुत्वैश्च।।8।।

सूत्रार्थ - सत्, संख्या, क्षेत्र, स्पर्शन, काल, अन्तर, भाव और अल्पबहुत्व से भी सम्यग्दर्शन आदि विषयों का ज्ञान होता है।।8।।

विस्तार रुचि शिष्यों के लिए -

पदार्थों को जानने के उपाय

सत्	संख्या	क्षेत्र	स्पर्शन	काल	अंतर	भाव	अल्पबहुत्व
(अस्तित्व)	(गिनती)	(वर्तमान निवास)	(तीन कालों में विचरण क्षेत्र)	(अवधि)	(विरह काल)	(परिणाम)	(कम-ज्यादा की तुलना करना)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानि ज्ञानम्।।9।।

सूत्रार्थ - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान और केवलज्ञान - ये पाँच ज्ञान हैं।।9।।

तत्प्रमाणे।।10।।

सूत्रार्थ - वह पाँचों प्रकार का ज्ञान दो प्रमाण रूप है।।10।।

आद्ये परोक्षम्।।11।।

सूत्रार्थ - प्रथम दो ज्ञान परोक्ष प्रमाण हैं।।11।।

प्रत्यक्षमन्यत्।।12।।

सूत्रार्थ - शेष सब ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।।12।।

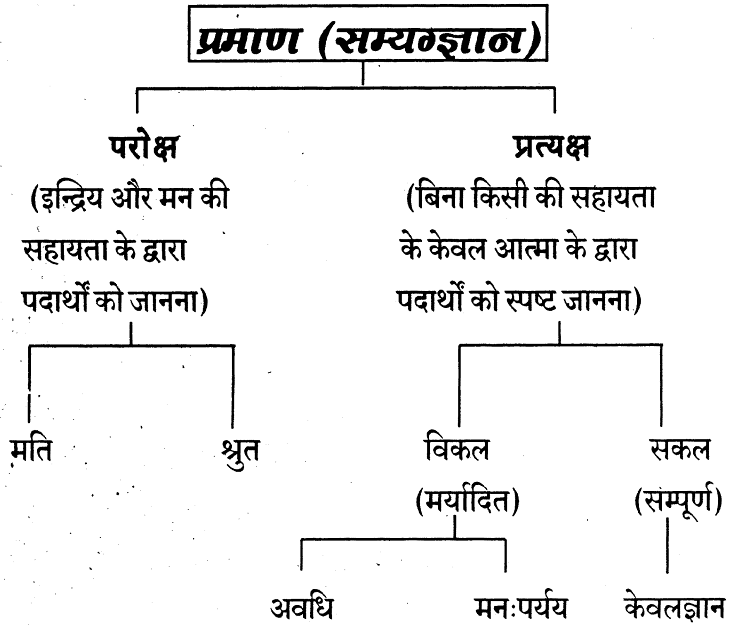

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञान सम्बन्धी प्रयोजनभूत विचार

मति-श्रुत ज्ञान	केवलज्ञान
1. हमारा वर्तमान प्रकट ज्ञान	1. हमारा स्वभाव
2. पराधीन	2. स्वाधीन
3. क्रमिक - इन्द्रियों द्वारा पदार्थों को क्रम से जानता है	3. युगपत् - सम्पूर्ण पदार्थों को इन्द्रिय बिना एकसाथ जानता है
4. क्षणिक - क्षायोपशमिक होने से क्षणिक है	4. शाश्वत - क्षायिक होने से शाश्वत रहता है
5. घटता-बढ़ता है	5. एक जैसा रहता है
6. इन्द्रियज ज्ञान है	6. अतीन्द्रियज ज्ञान है

मतिः स्मृतिः संज्ञा चिन्ताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरम्।।13।।

सूत्रार्थ - मति, स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध - ये पर्यायवाची नाम हैं।।13।।

मतिज्ञान के अन्य नाम

मति (इन्द्रिय और मन की सहायता)
स्मृति (स्मरण)
संज्ञा (जोड़रूप ज्ञान)
चिन्ता (तर्क-व्याप्ति)
अभिनिबोध (अनुमान)

तदिन्द्रियानिन्द्रियनिमित्तम्।।14।।

सूत्रार्थ - वह (मतिज्ञान) इन्द्रिय और मन के निमित्त से होता है।।14।।

मतिज्ञान की उत्पत्ति

5 इन्द्रिय
इन्द्रिय
(आत्मा की पहचान के चिह्न)

मन
अनिन्द्रिय/नो इन्द्रिय
(किंचित् इन्द्रिय)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अवग्रहेहावायधारणाः।।15।।

सूत्रार्थ - अंवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा - ये मतिज्ञान के चार भेद हैं।।15।।

मतिज्ञान के भेद

	अवग्रह	ईहा	अवाय	धारणा
स्वरूप	सर्वप्रथंम जानना	इच्छा-अभिलाषा	निर्णय	भूलना नहीं
कालांतर में		संशय-विस्मरण हो जाता है	संशय तो नहीं, पर विस्मरण होता है	न संशय, न विस्मरण होता है

बहुबहुविधक्षिप्रानिःसृतानुक्तध्रुवाणां सेतराणाम्।।16।।

सूत्रार्थ - सेतर (प्रतिपक्षसहित) बहु, बहुविध, क्षिप्र, अनि:सृत, अनुक्त और ध्रुव के अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा रूप मतिज्ञान होते हैं।।16।।

अर्थस्य।।17।।

सूत्रार्थ - अर्थ (वस्तु के) अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा - ये चारों मतिज्ञान होते हैं।।17।।

पदार्थों के भेद

बहु (1) (बहुत पदार्थ)	**बहु विध**(2) (बहुत प्रकार के पदार्थ)	**क्षिप्र**(3) (शीघ्र)	**अनिःसृत**(4) (गूढ़)	**अनुक्त**(5) (बिना कहा)	**ध्रुव**(6) (अचल/बहुत काल स्थायी)
अल्प(7) (अल्प पदार्थ)	**एक विध**(8) (एक प्रकार के पदार्थ)	**अक्षिप्र**(9) (मंद)	**निःसृत**(10) (प्रकट)	**उक्त**(11) (बताया हुआ)	**अध्रुव**(12) (चंचल/विनाशीक)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

व्यञ्जनस्यावग्रहः ||18||

सूत्रार्थ - व्यंजन का अवग्रह ही होता है||18||

न चक्षुरनिन्द्रियाभ्याम्||19||

सूत्रार्थ - चक्षु और मन से व्यंजनावग्रह नहीं होता||19||

मतिज्ञान का विषय व 336 भेद

व्यंजन(अप्रकट-अव्यक्त)

↓

सिर्फ अवग्रह ⟶ 1

↓

नेत्र एवं मन के अलावा शेष 4 इन्द्रियों से x4

↓

12 प्रकार के पदार्थ x 12

कुल = 48

अर्थ(प्रकट-व्यक्त)

↓

अवग्रह, ईहा, अवाय, धारणा → 4

↓

पाँचों इन्द्रियों एवं मन से x 6

↓

12 प्रकार के पदार्थ x 12

\+ 288

= 336

ज्ञान की उत्पत्ति का क्रम

चक्षु को छोड़कर शेष चार इन्द्रियाँ	अचक्षुदर्शन → व्यञ्जनावग्रह → अर्थावग्रह → → ईहा → अवाय → धारणा
चक्षु इन्द्रिय	चक्षुदर्शन → अर्थावग्रह → ईहा → अवाय → धारणा
मन	अचक्षु दर्शन → अर्थावग्रह → ईहा → अवाय → धारणा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदम्।।20।।

सूत्रार्थ - श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है। वह दो प्रकार का, अनेक प्रकार का और बारह प्रकार का है।।20।।

श्रुतज्ञान

(मतिज्ञान से जाने हुए पदार्थ का अवलम्बन कर अन्य पदार्थ का ज्ञान)

अंगप्रविष्ट → 12 भेद (द्वादशांग)

अंगबाह्य → अनेक भेद (सामायिकादि 14 प्रकीर्णक)

भवप्रत्ययोऽवधिर्देवनारकाणाम्।।21।।

सूत्रार्थ - भवप्रत्यय अवधिज्ञान देव और नारकियों के होता है।।21।।

क्षयोपशमनिमित्तः षड्विकल्पः शेषाणाम्।।22।।

सूत्रार्थ - क्षयोपशम निमित्तक अवधिज्ञान छह प्रकार का है, जो शेष अर्थात् तिर्यंचों और मनुष्यों के होता है।।22।।

अवधिज्ञान

(द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की मर्यादा लिये रूपी पदार्थों को स्पष्ट जानना)

	भव प्रत्यय	गुण प्रत्यय(क्षयोपशम निमित्तिक)
स्वरूप	जिसके होने में भव ही कारण हो	जिसके होने में सम्यग्दर्शनादि कारण हो
स्वामी	सर्व देव, नारकी, तीर्थंकर	मनुष्य, तिर्यंच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणप्रत्यय

- **अनुगामी** (अन्य क्षेत्र/ भव में साथ जाए)
- **अननुगामी** (अन्यक्षेत्र/ भव में साथ न जाए)
- **वर्धमान** (बढ़ता हुआ)
- **हीयमान** (घटता हुआ)
- **अवस्थित** (न घटे, न बढ़े)
- **अनवस्थित** (घटता, बढ़ता रहे)

अन्य प्रकार से अवधिज्ञान के भेद

देशावधि **परमावधि** **सर्वावधि**

- देशावधि — भवप्रत्यय
- देशावधि, परमावधि, सर्वावधि — गुणप्रत्यय

परमावधि और सर्वावधि के स्वामी नियम से उसी भव में मोक्ष जाते हैं।

ऋजुविपुलमती मनःपर्ययः।।23।।

सूत्रार्थ - ऋजुमति और विपुलमति मनःपर्ययज्ञान हैं।।23।।

विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः।।24।।

सूत्रार्थ - विशुद्धि और अप्रतिपात की अपेक्षा इन दोनों में अन्तर है।।24।।

मनःपर्ययज्ञान

(जो दूसरों के मन में स्थित रूपी पदार्थों को स्पष्ट जाने)

- **ऋजुमति** — * सरल को जाने
- **विपुलमति** — * सरल - कुटिल दोनों को जाने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ऋजुमति - विपुलमति में अंतर

ऋजुमति	विपुलमति
चिन्तित पदार्थ को जानता है	चिन्तित, अचिन्तित, अर्धचिन्तित को जानता है
आत्मा की कम विशुद्धता होती है	अधिक विशुद्धता होती है
संयम परिणामों में गिरावट हो सकती है (प्रतिपाती)	गिरावट नहीं हो सकती है (अप्रतिपाती)
उसी भव में मोक्ष जाने का नियम नहीं है	नियम से उसी भव में मोक्ष जाते हैं

विशुद्धिक्षेत्रस्वामिविषयेभ्योऽवधिमनःपर्यययोः||25||

सूत्रार्थ - विशुद्धि, क्षेत्र, स्वामी और विषय की अपेक्षा अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान में भेद है||25||

अवधि-मनःपर्यय ज्ञान में अंतर

	अवधिज्ञान	मनःपर्ययज्ञान
विशुद्धि -	कम विशुद्ध	अधिक विशुद्ध
क्षेत्र **उत्पत्ति क्षेत्र** **विषय क्षेत्र**	 त्रस नाड़ी समस्त लोक	 मनुष्य लोक 45 लाख योजन का घनप्रतर रूप क्षेत्र
स्वामी	चारों गति के सैनी पंचेन्द्रिय पर्याप्त जीव	-कर्मभूमि के गर्भज मनुष्यों को एवं -जो संयमी हो एवं -जो वर्धमान चारित्र सहित हो एवं -जिसके 7 ऋद्धियों में से कम से कम 1 ऋद्धि हो
विषय	परमाणु तक	अवधिज्ञान के विषय का अनंतवाँ भाग (मन के विकल्प ज्यादा सूक्ष्म होते हैं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु||26||

सूत्रार्थ - मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की प्रवृत्ति कुछ पर्यायों से युक्त सब द्रव्यों में होती है||26||

रूपिष्ववधेः||27||

सूत्रार्थ - अवधिज्ञान की प्रवृत्ति रूपी पदार्थों में होती है||27||

तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य||28||

सूत्रार्थ - मन:पर्ययज्ञान की प्रवृत्ति अवधिज्ञान के विषय के अनन्तवें भाग में होती है||28||

सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य||29||

सूत्रार्थ - केवलज्ञान की प्रवृत्ति सब द्रव्य और उनकी सब पर्यायों में होती है||29||

5 ज्ञानों का विषय

	मति-श्रुत	अवधि	मनःपर्यय	केवल
द्रव्य	सर्व द्रव्य	रूपी द्रव्य * पुद्गल * संसारी जीव	रूपी द्रव्य	सर्व द्रव्य
पर्याय	कुछ पर्यायें	कुछ पर्यायें	कुछ पर्यायें (अवधि का अनंतवाँ भाग)	सर्व पर्यायें

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः ||30||

सूत्रार्थ - एक आत्मा में एक साथ एक से लेकर चार ज्ञान तक भजना से होते हैं||30||

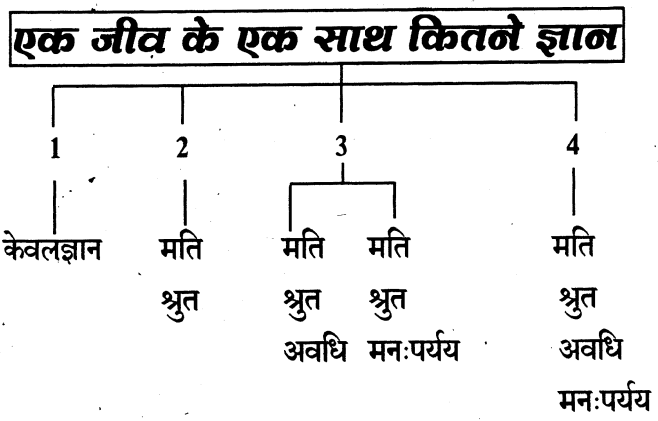

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मतिश्रुतावधयो विपर्ययश्च।।31।।

सूत्रार्थ - मति, श्रुत और अवधि - ये तीन विपर्यय भी हैं।।31।।

सदसतोरविशेषाद्यदृच्छोपलब्धेरुन्मत्तवत्।।32।।

सूत्रार्थ - वास्तविक और अवास्तविक के अन्तर के बिना यदृच्छोपलब्धि (जब जैसा जी में आया उस रूप ग्रहण होने) के कारण उन्मत्त की तरह ज्ञान भी अज्ञान हो जाता है।।32।।

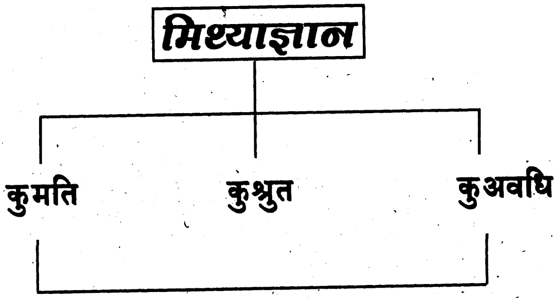

मिथ्यादृष्टि का सर्व ज्ञान मिथ्या

↓ क्योंकि ?

उसका श्रद्धान मिथ्या

↓ श्रद्धान कैसा ?

सत्-असत् का विवेक नहीं

↓ किसके जैसा ?

पागल की तरह जो अपनी इच्छानुसार पदार्थ का ग्रहण करता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नैगमसंग्रहव्यवहारर्जुसूत्रशब्दसमभिरूढैवम्भूता नयाः ||33||

सूत्रार्थ - नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ़ और एवंभूत - ये सात नय हैं||33||

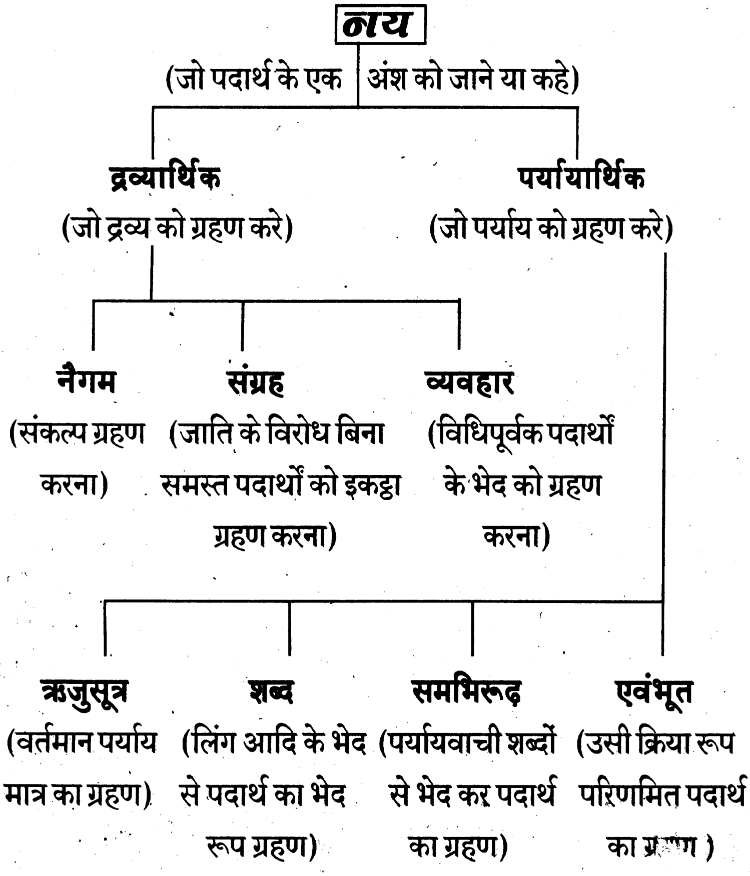

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्वितीय अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
जीव के असाधारण भाव	1-7	7	20-26
जीव का लक्षण	8-9	2	26-27
जीवों के भेद	10-14	5	28-29
इन्द्रियाँ	15-24	10	30-31
विग्रहगति	25-30	6	32-33
जन्म और योनि	31-35	5	33-36
शरीर	36-49	14	36-40
वेद	50-52	3	40-41
आयु अपवर्तन से मरण	53	1	41
	कुल	53	

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च।।1।।

सूत्रार्थ - औपशमिक, क्षायिक, मिश्र, औदायिक और पारिणामिक - ये जीव के स्वतत्त्व हैं।।1।।

द्विनवाष्टादशैकविंशतित्रिभेदा यथाक्रमम्।।2।।

सूत्रार्थ - उक्त पाँच भावों के क्रम से दो, नौ, अठारह, इक्कीस और तीन भेद हैं।।2।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जीव के असाधारण भाव

नाम	औपशमिक	क्षायिक	मिश्र (क्षायोपशमिक)	औदयिक	पारिणामिक
भेद	2	9	18	21	3
कर्म का	उपशम (दबना)	क्षय (अत्यन्त वियोग)	क्षयोपशम (फल, दबना, वियोग एक साथ)	उदय (फल)	कर्म-निरपेक्ष -
संबंधित कर्म	मोहनीय	4 घातिया	4 घातिया	8 कर्म	-
उदाहरण	जल में मैल का नीचे बैठना	जल का पूर्ण शुद्ध होना	जल मे कुछ मैल का अभाव तथा दबना एवं कुछ का प्रकट होना	गंदला जल	जल सामान्य
आत्मा में	श्रद्धा व चारित्र सम्बन्धी भाव-मल दबना	गुणों की अवस्था में अशुद्धता का सर्वथा क्षय	गुणों का आंशिक विकास	विभाव रूप परिणमन	जीवत्व,भव्यत्व अभव्यत्व होना
हेय-उपादेय	एकदेश उपादेय	प्रकट करने योग्य उपादेय	एकदेश उपादेय	हेय	आश्रय करने योग्य परम उपादेय
जानने से लाभ व सिद्धि	पारिणामिक भाव के आश्रय से विकार दूर होना शुरू होता है	पुरुषार्थ से विकार नष्ट होता है	अनादि से विकार करता हुआ भी जीव जड़ नहीं होता है	स्वभाव से शुद्ध होने पर भी कर्म सम्बन्ध से पर्याय में विकार है	आत्म - निर्भरता आती है
जीवों की संख्या	संख्यात अथवा असंख्यात	अनंत (औपशमिक से अनंतगुणे) 4-14 गुण-स्थानवर्ती+ सिद्ध भगवान	अनंत (क्षायिक से अनंतगुणे) 1-12 गुणस्थान-वर्ती	अनंत (क्षायोपशमिक से विशेष अधिक) 1-14 गुण-स्थानवर्ती	समस्त जीव (औदयिक से विशेष अधिक) 1-14 गुणस्थानवर्ती +सिद्ध भगवान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5 भावों को समझने के लिए आवश्यक कर्म प्रकृतियाँ -

कर्म

- **घातिया** (आत्मा के अनुजीवी गुणों को घाते) (47)
  - ज्ञानावरण (5)
  - दर्शनावरण (9)
  - मोहनीय (28)
    - दर्शन मोहनीय (3)
      - मिथ्यात्व
      - सम्यग्मिथ्यात्व
      - सम्यक्त्व प्रकृति
    - चारित्र मोहनीय (25)
      - कषाय (16)
        - अनंतानुबन्धी क्रोध-मान-माया-लोभ (4)
        - अप्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ (4)
        - प्रत्याख्यानावरण क्रोध-मान-माया-लोभ (4)
        - संज्वलन क्रोध-मान-माया-लोभ (4)
      - नोकषाय (9)
  - अंतराय (5)
- **अघातिया**
  - वेदनीय
  - आयु
  - नाम
  - गोत्र

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्वचारित्रे ||3||

सूत्रार्थ - औपशमिक भाव के दो भेद हैं- औपशमिक सम्यक्त्व और औपशमिक चारित्र ||3||

औपशमिक भाव

- **औपशमिक सम्यक्त्व** (मोहनीय की 7, 6 अथवा 5 प्रकृतियों के दबने से)
- **औपशमिक चारित्र** (मोहनीय की 21 प्रकृतियों के दबने से)

ज्ञानदर्शनदानलाभभोगोपभोगवीर्याणि च||4||

सूत्रार्थ - क्षायिक भाव के नौ भेद हैं - क्षायिक ज्ञान, क्षायिक दर्शन, क्षायिक दान, क्षायिक लाभ, क्षायिक भोग, क्षायिक उपभोग, क्षायिक वीर्य, क्षायिक सम्यक्त्व और क्षायिक चारित्र||4||

क्षायिक भाव

- **क्षायिक ज्ञान** (ज्ञानावरण के क्षय से)
- **क्षायिक दर्शन** (दर्शनावरण) के क्षय से)
- **क्षायिक दान**, **क्षायिक लाभ**, **क्षायिक भोग**, **क्षायिक उपभोग**, **क्षायिक वीर्य** (अंतराय के क्षय से)
- **क्षायिक सम्यक्त्व** (दर्शन मोहनीय के क्षय से)
- **क्षायिक चारित्र** (चारित्र मोहनीय के क्षय से)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानाज्ञानदर्शनलब्ध्यश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्वचारित्रसंयमा-संयमाश्च।।5।।

सूत्रार्थ - क्षायोपशमिक भाव के अठारह भेद हैं- चार ज्ञान, तीन अज्ञान, तीन दर्शन, पाँच दानादि लब्धियाँ, सम्यक्त्व, चारित्र और संयमासंयम।।5।।

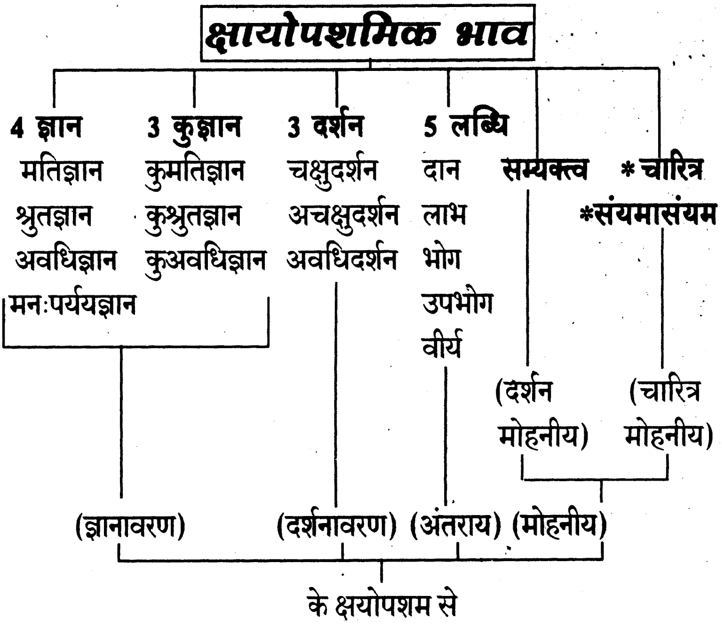

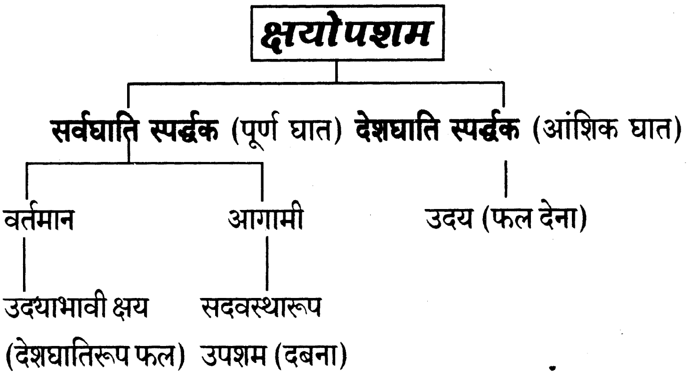

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गतिकषायलिङ्गमिथ्यादर्शनाज्ञानासंयतासिद्धलेश्याश्चतुश्चतुस्त्र्ये-कैकैकैकषड्भेदाः ||6||

सूत्रार्थ - औदयिक भाव के इक्कीस भेद हैं- चार गति, चार कषाय, तीन लिंग, एक मिथ्यादर्शन, एक अज्ञान, एक असंयम, एक असिद्ध भाव और छह लेश्याएँ||6||

औदयिक भाव

- **4 गति**
  - नरकगति
  - तिर्यंचगति
  - मनुष्यगति
  - देवगति
- **4 कषाय**
  - क्रोध
  - मान
  - माया
  - लोभ
- **3 वेद**
  - स्त्रीवेद
  - पुरुषवेद
  - नपुंसक वेद
- **6 लेश्याएँ**
  - कृष्ण लेश्या
  - नील लेश्या
  - कापोत लेश्या
  - पीत लेश्या
  - पद्म लेश्या
  - शुक्ल लेश्या
- **4 शेष**
  - मिथ्यादर्शन
  - अज्ञान
  - असंयम
  - असिद्धत्व

जीवभव्याभव्यत्वानि च||7||

सूत्रार्थ - पारिणामिक भाव के तीन भेद हैं- जीवत्व, भव्यत्व और अभव्यत्व||7||

पारिणामिक भाव

- **जीवत्व** (चेतना परिणाम)
- **भव्यत्व** (सम्यग्दर्शनादि प्रकट होने की योग्यता)
- **अभव्यत्व** (सम्यग्दर्शनादि प्रकट न होने की योग्यता)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यक्त्व आदि गुणों में सम्भावित भाव

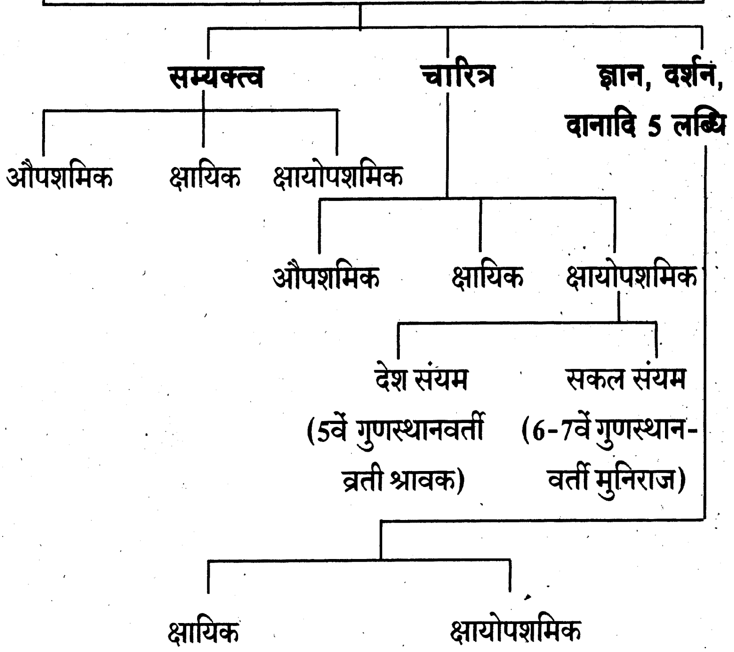

उपयोगो लक्षणम्।।8।।

सूत्रार्थ - उपयोग जीव का लक्षण है।।8।।

लक्षणाभास (सदोष लक्षण)

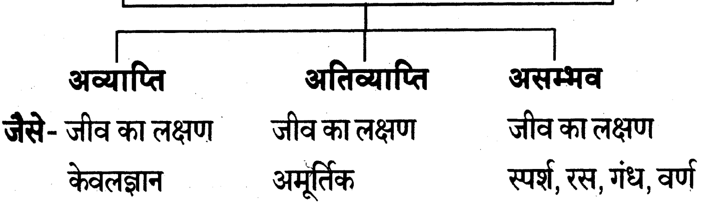

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लक्षण

(बहुत से मिले पदार्थों में से एक को जुदा करने वाला हेतु)

- **आत्मभूत**
  (जैसे - उपयोग जीव का आत्मभूत लक्षण है)
- **अनात्मभूत**

स द्विविधोऽष्टचतुर्भेदः ।।9।।

सूत्रार्थ - वह उपयोग दो प्रकार का है- ज्ञानोपयोग और दर्शनोपयोग। ज्ञानोपयोग आठ प्रकार का है और दर्शनोपयोग चार प्रकार का है।।9।।

उपयोग (जीव का लक्षण)

- **ज्ञानोपयोग (विशेष जानना)**
  (साकार)
  - 5 सम्यग्ज्ञान
  - 3 मिथ्याज्ञान
- **दर्शनोपयोग (सामान्य प्रतिभास)**
  (निराकार)
  - चक्षुदर्शन
  - अचक्षुदर्शन
  - अवधिदर्शन
  - केवलदर्शन

उपयोग (अध्यात्म भाषा से 3 प्रकार)

- **शुभोपयोग**
  (देव, शास्त्र, गुरु की भक्ति आदि)
- **अशुभोपयोग**
  (5 पाप, 4 कषाय व इन्द्रियविषयों में प्रवृत्ति)
- **शुद्धोपयोग**
  (शुभ और अशुभ उपयोग से रहित वीतराग भाव)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसारिणो मुक्ताश्च।।10।।

सूत्रार्थ - जीव दो प्रकार के हैं- संसारी और मुक्त।।10।।

समनस्कामनस्काः।।11।।

सूत्रार्थ - मनवाले और मनरहित ऐसे संसारी जीव हैं।।11।।

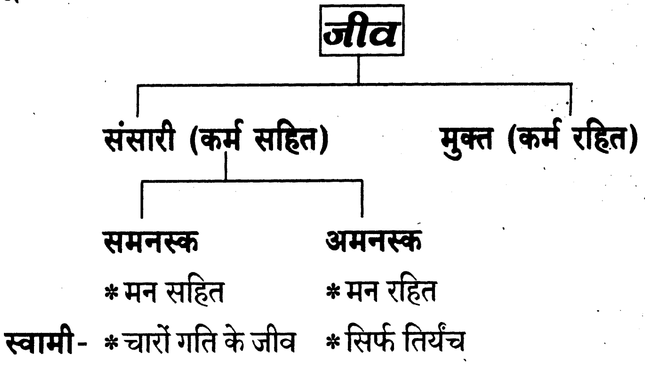

संसारिणस्त्रसस्थावराः।।12।।

सूत्रार्थ - (तथा) संसारी जीव त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार हैं।।12।।

पृथिव्यप्तेजोवायुवनस्पतयः स्थावराः।।13।।

सूत्रार्थ - पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक और वनस्पतिकायिक - ये पाँच स्थावर हैं।।13।।

द्वीन्द्रियादयस्त्रसाः।।14।।

सूत्रार्थ - दो इन्द्रिय आदि त्रस हैं।।14।।

सूत्र क्रमांक 15 से 21 तक के लिए आगे देखें !

वनस्पत्यन्तानामेकम्।।22।।

सूत्रार्थ - वनस्पतिकायिक तक के जीवों के एक अर्थात् प्रथम इन्द्रिय होती है।।22।।

कृमिपिपीलिकाभ्रमरमनुष्यादीनामेकैकवृद्धानि।।23।।

सूत्रार्थ - कृमि, पिपीलिका, भ्रमर और मनुष्य आदि के क्रम से एक-एक इन्द्रिय अधिक होती है।।23।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संसारी जीवों के अन्य प्रकार से भेद

- त्रस (त्रस नामकर्म का उदय)
  - द्वीन्द्रिय — जैसे- (लट)
  - त्रीन्द्रिय (चींटी)
  - चतुरिन्द्रिय (भ्रमर)
  - पंचेन्द्रिय (मनुष्य)
- स्थावर (स्थावर नामकर्म का उदय)
  - एकेन्द्रिय
    - पृथिवी
    - जल
    - अग्नि
    - वायु
    - वनस्पति
      - साधारण (निगोदिया) (एक शरीर अनेक जीव स्वामी)
      - प्रत्येक (एक शरीर एक स्वामी)
        - सप्रतिष्ठित (जिसके आश्रय से अनेक निगोदिया शरीर हों)
        - अप्रतिष्ठित (जिसके आश्रय से कोई निगोदिया न हो)

पाँच स्थावरों के प्रत्येक के 4 - 4 भेद

जैसे

- **पृथिवी** — पृथिवी सामान्य
- **पृथिवी जीव** — विग्रहगति का जीव जो पृथिवी में जन्म लेने जा रहा है
- **पृथिवीकायिक** — पृथिवीरूप शरीर के सम्बन्ध से युक्त जीव
- **पृथिवीकाय** — पृथिवीकायिक जीव द्वारा छोड़ा गया शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चेन्द्रियाणि।।15।।

सूत्रार्थ - इन्द्रियाँ पाँच हैं।।15।।

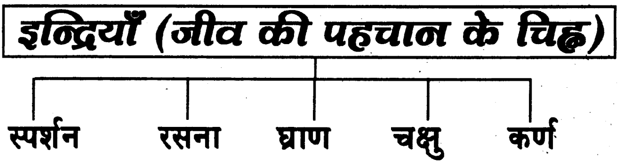

द्विविधानि।।16।।

सूत्रार्थ - वे प्रत्येक दो-दो प्रकार की हैं।।16।।

निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियम्।।17।।

सूत्रार्थ - निर्वृत्ति और उपकरणरूप द्रव्येन्द्रिय है।।17।।

लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियम्।।18।।

सूत्रार्थ - लब्धि और उपयोगरूप भावेन्द्रिय है।।18।।

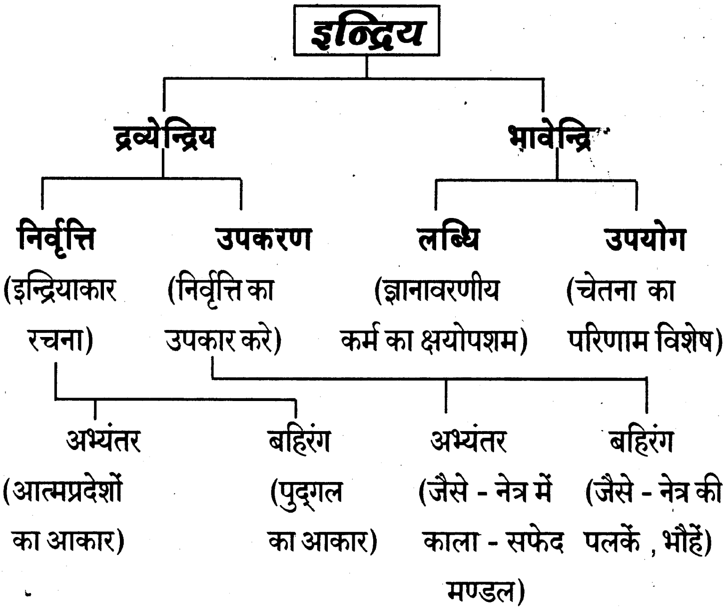

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुःश्रोत्राणि।।19।।

सूत्रार्थ - स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र - ये पाँच इन्द्रियाँ हैं।।19।।

स्पर्शरसगन्धवर्णशब्दास्तदर्थाः।।20।।

सूत्रार्थ - स्पर्शन, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द - ये क्रम से उन इन्द्रियों के विषय हैं।।20।।

श्रुतमनिन्द्रियस्य।।21।।

सूत्रार्थ - श्रुत मन का विषय है।।21।।

इन्द्रियों और मन के विषय व आकार

नाम	स्पर्शन	रसना	घ्राण	चक्षु	श्रोत्र	मन
विषय	8 प्रकार का स्पर्श	5 प्रकार का रस	2 प्रकार की गंध	5 प्रकार का वर्ण	7 प्रकार का शब्द	श्रुतज्ञान के विषय-भूत पदार्थ
आकार	अनेक	खुरपा	तिल पुष्प	मसूर दाल	यव की नाली	आठ पंखुड़ियों का फूला कमल

संज्ञिनः समनस्काः।।24।।

सूत्रार्थ - मनवाले जीव संज्ञी होते हैं।।24।।

संज्ञा शब्द के अनेक अर्थ

- नाम
- ज्ञान
- आहारादि की इच्छा
- **मनसहित** (यह अर्थ यहाँ सूत्र में विवक्षित है)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विग्रहगतौ कर्मयोगः ||25||

सूत्रार्थ - विग्रहगति में कार्मण काययोग होता है||25||

अनुश्रेणि गतिः ||26||

सूत्रार्थ - गति श्रेणी के अनुसार होती है||26||

अविग्रहा जीवस्य||27||

सूत्रार्थ - मुक्त जीव की गति विग्रहरहित होती है||27||

विग्रहवती च संसारिणः प्राक्चतुर्भ्यः||28||

सूत्रार्थ - संसारी जीव की गति विग्रहरहित और विग्रहवाली होती है| उसमें विग्रहवाली गति चार समय से पहले अर्थात् तीन समय तक होती है||28||

एकसमयाऽविग्रहा||29||

सूत्रार्थ - एक समयवाली गति विग्रहरहित होती है||29||

एकं द्वौ त्रीन्वाऽनाहारकः||30||

सूत्रार्थ - एक, दो या तीन समय तक जीव अनाहारक रहता है||30||

विग्रहगति

(जीव का एक शरीर छोड़ दूसरे शरीर के लिए गमन करना)

अविग्रहा (मोड़े रहित) — **विग्रहवती (मोड़े सहित)**

नाम	ऋजुगति/इषुगति	पाणिमुक्ता	लांगलिका	गौमूत्रिका
मोड़ा	सीधी - बिना मोड़	1 मोड़ा	2 मोड़ा	3 मोड़ा
समय	1 समय	2 समय	3 समय	4 समय
अनाहारक काल	अनाहारक नहीं होता	1 समय	2 समय	3 समय

- औदारिकादि तीन शरीर तथा छः पर्याप्तियों के योग्य पुद्गलों के ग्रहण करने को आहार कहते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुश्रेणि गति

(आकाश के प्रदेशों की पंक्ति के अनुसार गमन)

- **मुक्त जीव** → सिर्फ ऋजुगति
- **संसारी जीव** → चारों प्रकार की गति

सम्मूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म।।31।।

सूत्रार्थ - सम्मूर्च्छन, गर्भ और उपपाद - ये (तीन) जन्म हैं।।31।।

सूत्र क्रमांक 32 के लिए आगे देखें!

जरायुजाण्डजपोतानां गर्भः।।33।।

सूत्रार्थ - जरायुज, अण्डज और पोत जीवों का गर्भजन्म होता है।।33।।

देवनारकाणामुपपादः।।34।।

सूत्रार्थ - देव और नारकियों का उपपाद जन्म होता है।।34।।

शेषाणां सम्मूर्च्छनम्।।35।।

सूत्रार्थ - शेष सब जीवों का सम्मूर्च्छन जन्म होता है।।35।।

जन्म

(पूर्व शरीर का त्याग कर नये शरीर का ग्रहण करना)

- **गर्भ** (माता-पिता के रज व वीर्य से)
  - **जरायुज** (जेर लिपटे हुए जरायु से पैदा होते हैं) जैसे - गाय, हाथी
  - **अंडज** (अंडे से पैदा होते हैं) चील, कबूतर
  - **पोत** (बिना आवरण पैदा होते ही चलने लगते हैं) सिंह, नेवला
- **उपपाद** (अंतर्मुहूर्त में शरीर पूर्ण युवा हो जाता है) → देव व नारकी
- **सम्मूर्च्छन** (सब ओर से परमाणु ग्रहण कर शरीर की रचना) → शेष जीव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निम्नलिखित जीवों के नियम से निम्न जन्म ही होते हैं।

सम्मूर्छन
* एकेन्द्रिय
* विकलेन्द्रिय
* लब्धि अपर्याप्त मनुष्य

गर्भ
* पर्याप्त मनुष्य
* भोगभूमिया मनुष्य
* भोगभूमिया तिर्यंच

उपपाद
* देव
* नारकी

कर्मभूमिया पंचेन्द्रिय असैनी व सैनी तिर्यंच

गर्भज
- पर्याप्तक

सम्मूर्च्छन
- पर्याप्तक
- अपर्याप्तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सचित्तशीतसंवृताः सेतरा मिश्राश्चैकशस्तद्योनयः||32||

सूत्रार्थ - सचित्त, शीत और संवृत तथा इनकी प्रतिपक्षभूत अचित्त, उष्ण और विवृत तथा मिश्र अर्थात् सचित्ताचित्त, शीतोष्ण और संवृतविवृत - ये उसकी अर्थात् जन्म की योनियाँ हैं||32||

योनि (उत्पत्ति स्थान)

- **सचित्त** (चेतना सहित) | **अचित्त** (चेतना रहित) | **सचित्ताचित्त** (मिश्र)
- **संवृत** (ढकी) | **विवृत** (खुली) | **संवृतविवृत** (कुछ ढकी, कुछ खुली)
- **शीत** (ठंडी) | **उष्ण** (गर्म) | **शीतोष्ण** (मिश्र)

प्रत्येक जीव के ऊपर नौ में से हर समूह में से एक, अर्थात् कुल मिलाकर 3 योनि नियम से होती हैं।

किस योनि में कौन जीव जन्म लेता है?

जीव	योनि		
देव व नारकी	अचित्त	शीत व उष्ण	संवृत्त
गर्भज-मनुष्य व तिर्यंच	सचित्ताचित्त		संवृतविवृत
सम्मूर्छन मनुष्य व पंचेन्द्रिय तिर्यंच		तीनों प्रकार	विवृत
विकलेन्द्रिय	दो प्रकार		
एकेन्द्रिय (पृथिवी, वायु, प्रत्येक वनस्पति)	(अचित्त व मिश्र)		
अग्नि		उष्ण	संवृत
जल		शीत	
साधारण वनस्पति	सचित्त	तीनों प्रकार	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

84 लाख योनियाँ

-तिर्यंच		
* एकेन्द्रिय		
नित्य निगोद, इतर निगोद, पृथिवी, जल		
अग्नि, वायु (प्रत्येक की 7-7 लाख)	6 x 7	42 लाख
प्रत्येक वनस्पति		10 लाख
* विकलेन्द्रिय		
द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय		
(प्रत्येक की 2 लाख)	3 x 2	6 लाख
* पंचेन्द्रिय तिर्यंच		4 लाख
-नारकी		4 लाख
-देव		4 लाख
-मनुष्य		14 लाख
कुल योनि		**84 लाख**

औदारिकवैक्रियिकाहारकतैजसकार्मणानि शरीराणि।।36।।

सूत्रार्थ- औदारिक, वैक्रियिक, आहारक, तैजस और कार्मण -ये पाँच शरीर हैं।।36।।

परं परं सूक्ष्मम्।।37।।

सूत्रार्थ - आगे-आगे का शरीर सूक्ष्म है।।37।।

प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात्।।38।।

सूत्रार्थ - तैजस से पूर्व तीन शरीरों में आगे-आगे का शरीर प्रदेशों की अपेक्षा असंख्यातगुणा है।।38।।

अनन्तगुणे परे।।39।।

सूत्रार्थ - परवर्ती दो शरीर प्रदेशों की अपेक्षा उत्तरोत्तर अनन्तगुणे हैं।।39।।

सूत्र क्रमांक 40 से 44 तक के लिए आगे देखें!

गर्भसम्मूर्छनजमाद्यम्।।45।।

सूत्रार्थ - पहला शरीर गर्भ और संमूर्च्छन जन्म से पैदा होता है।।45।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औपपादिकं वैक्रियिकम्।।46।।

सूत्रार्थ - वैक्रियिक शरीर उपपाद जन्म से पैदा होता है।।46।।

शरीर

नाम	औदारिक	वैक्रियिक	आहारक	तैजस	कार्मण
स्वामी	मनुष्य व तिर्यंच	देव व नारकी	छठे गुणस्थान-वर्ती आहारक ऋद्धिधारी मुनिराज	सभी संसारी जीव	सभी संसारी जीव
स्वरूप	स्थूल शरीर	जो एक-अनेक, सूक्ष्म-स्थूल, हल्का-भारी रूप हो सके	जो सूक्ष्म पदार्थ का निर्णय व संयम की रक्षा के लिए होता है	जो तीन शरीरों को कांति देता है	ज्ञानावरणादि 8 कर्मों का समूह
सूक्ष्मता	सबसे स्थूल	औदारिक से सूक्ष्म	वैक्रियिक से सूक्ष्म	आहारक से सूक्ष्म	सबसे सूक्ष्म
प्रदेशों (परमाणुओं) की संख्या	सबसे कम (पर अनंत)	औदारिक से असंख्यात गुणे	वैक्रियिक से असंख्यात गुणे	आहारक से अनंतगुणे	सबसे ज्यादा (तैजस से अनंत गुणे)

आगे-आगे के शरीरों में प्रदेशों की अधिकता होने पर भी उनका सम्बन्ध लौह पिण्ड की तरह सघन होता है, अतः वे बाह्य में अल्प (सूक्ष्म) रूप होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्रतिघाते।।40।।

सूत्रार्थ - प्रतिघात रहित हैं।।40।।

अनादिसम्बन्धे च।।41।।

सूत्रार्थ - आत्मा के साथ अनादि सम्बन्ध वाले हैं।।41।।

सर्वस्य।।42।।

सूत्रार्थ - तथा सब संसारी जीवों के होते हैं।।42।।

तैजस और कार्मण शरीर की विशेषता

- **अप्रतिघात** (न किसी से रुकता है, न किसी को रोकता है)
- **अनादि-सम्बन्ध** (अनादि-संतति अपेक्षा) (सादि-निर्जरा अपेक्षा)
- **सभी के** (सर्व संसारी जीवों के)

तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्नाचतुर्भ्यः।।43।।

सूत्रार्थ - एक साथ एक जीव के तैजस और कार्मण से लेकर चार शरीर तक विकल्प से होते हैं।।43।।

एक साथ एक जीव के कितने शरीर

	2	3		4	
कौन से-	तैजस, कार्मण	तैजस, कार्मण, औदारिक	तैजस, कार्मण, वैक्रियिक	तैजस, कार्मण, औदारिक, आहारक	तैजस, कार्मण, औदारिक, वैक्रियिक
स्वामी-	मोड़े वाली विग्रह गति में स्थित जीव	मनुष्य, तिर्यंच	देव, नारकी	छठे गुणस्थान-वर्ती आहारक ऋद्धिधारी मुनिराज	विक्रिया ऋद्धिधारी मुनिराज

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निरुपभोगमन्त्यम्।।44।।

सूत्रार्थ - अन्तिम शरीर उपभोग रहित है।।44।।

- इन्द्रियों के द्वारा शब्द वगैरह के ग्रहण करने को **उपभोग** कहते हैं।
- कार्मण शरीर में इस प्रकार का उपभोग न होने से वह **निरुपभोग** है।

लब्धिप्रत्ययं च।।47।।

सूत्रार्थ - तथा लब्धि से भी पैदा होता है।।47।।

वैक्रियिक शरीर

उपपाद जन्म से

* देव और नारकियों का

लब्धि से

* मुनिराज को तप विशेष से प्राप्त ऋद्धि
* औदारिक शरीर का ही परिणमन

तैजसमपि।।48।।

सूत्रार्थ - तैजस शरीर भी लब्धि से पैदा होता है।।48।।

तैजस शरीर

	अनिःसरण	निःसरण
स्वरूप	शरीरों को कांति देने वाला	शरीर से बाहर निकलने वाला
स्वामी	सभी संसारी जीव	ऋद्धिधारी मुनिराज
किसका परिणमन	तैजस वर्गणा का	आहार वर्गणा (औदारिक शरीर) का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निःसरण तैजस शरीर

शुभ	अशुभ
* करुणा के कारण निकलता है।	* क्रोध के कारण निकलता है।
* दाहिने कंधे से निकलता है।	* बायें कंधे से निकलता है।
* श्वेत वर्ण व शुभ आकृति का होता है।	* सिन्दूरी वर्ण व बिलाव के आकार का होता है।
* रोग, मारी आदि को दूर करता है।	* मन में रही विरुद्ध वस्तु एवं स्वयं को भस्मीभूत करता है।

शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव।।49।।

सूत्रार्थ - आहारक शरीर शुभ, विशुद्ध और व्याघात रहित है और वह प्रमत्तसंयत के ही होता है।।49।।

आहारक शरीर

शुभ	विशुद्ध	व्याघात रहित	मुनिराज को
(अच्छे कार्य के लिए होता है)	(शुभ कर्म के कारण श्वेत वर्ण समचतुरस्र संस्थान)	(ढाई द्वीप में न किसी से रुकता है, न किसी को रोकता है)	(छठे गुणस्थानवर्ती किन्हीं ऋद्धिधारी मुनिराज को ही होता है)

नारकसम्मूर्च्छिनो नपुंसकानि।।50।।

सूत्रार्थ - नारक और संमूर्च्छिन नपुंसक होते हैं।।50।।

न देवाः।।51।।

सूत्रार्थ - देव नपुंसक नहीं होते।।51।।

शेषास्त्रिवेदाः।।52।।

सूत्रार्थ - शेष के सब जीव तीन वेदवाले होते हैं।।52।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वेद

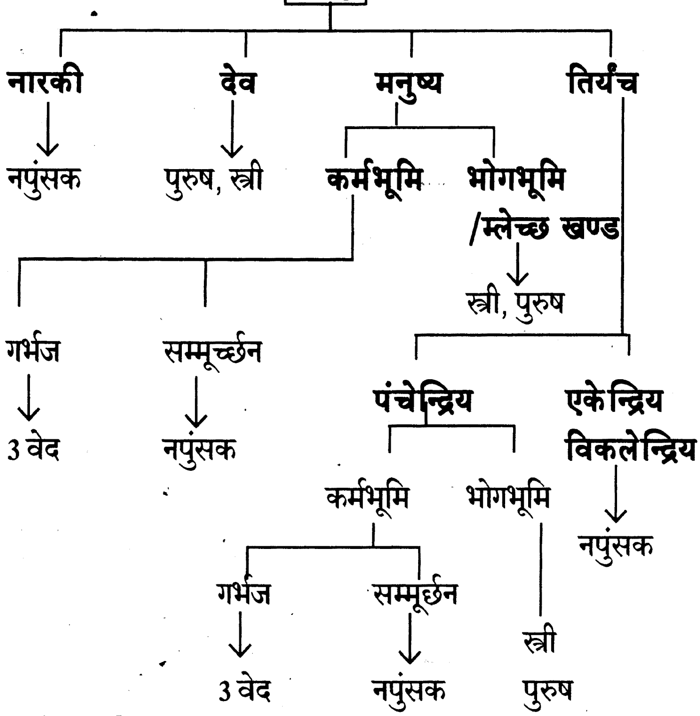

एकेन्द्रिय से चौइन्द्रिय तक सभी सम्मूर्च्छन जन्म वाले होने से नपुंसक ही हैं।

औपपादिकचरमोत्तमदेहाऽसंख्येयवर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः ।।53।।

सूत्रार्थ - उपपाद जन्मवाले, चरमोत्तम देहवाले और असंख्यात वर्ष की आयुवाले जीव अनपवर्त्य आयुवाले होते हैं।।53।।

अनपवर्त्य आयु (परिपूर्ण आयु भोग कर मरण होना)

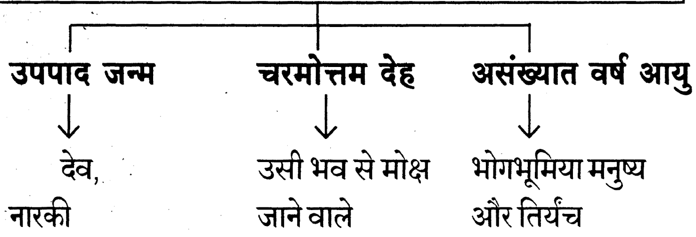

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तृतीय अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
अधोलोक का वर्णन			
सात पृथिवियाँ व उनमें बिल	1-2	2	44-46
नरकों के दुख	3-5	3	49-50
नरकों में उत्कृष्ट आयु	6	1	46-48
मध्यलोक का वर्णन			
द्वीप व समुद्रों के नाम, आकार व विस्तार	7-8	2	51
जम्बूद्वीप	9-32	24	52-59
क्षेत्र	10		53
पर्वत	11-13		54
सरोवर	14-19		55-56
महा नदियाँ	20-23		56-57
क्षेत्रों का विस्तार	24-26, 32		57-58
काल चक्र परिवर्तन	27-28		59-61
आयु	29-31		59
अढ़ाई द्वीप	33-35	3	62
मनुष्यों के भेद	36	1	62-63
कर्मभूमि	37	1	63
मनुष्य व तिर्यंचों की आयु	38-39	2	64-65
	कुल	39	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारकियों का वर्णन प्रसंग प्राप्त है। नारकियों का निवास स्थान बताने के लिए लोक, त्रस नाड़ी एवं अधोलोक का वर्णन यहाँ किया है।

लोक

- **कहाँ है** → अलोकाकाश के मध्य में
- **आकार** → 1) पुरुषाकार 2) डेढ़ मृदंगाकार
- **ऊँचाई** → सर्वत्र 14 राजू
- **लम्बाई** (उत्तर-दक्षिण) → सर्वत्र 7 राजू
- **चौड़ाई** (पूर्व-पश्चिम) → औसत 3.5 राजू
- **घनफल** → 343 घनराजू (14 x 7 x 3.5)

औसत 3.5 राजू →

तल में = 7 राजू

मध्य में= 1 राजू

ऊर्ध्व लोक का मध्य = 5 राजू

ऊपर = 1 राजू

औसत = $\frac{7+1+5+1}{4} = \frac{14}{4}$ = 3.5 राजू

त्रस नाड़ी

- **कहाँ है** → लोक के मध्य में
- **ऊँचाई** → कुछ कम 13 राजू
- **लम्बाई** → 1 राजू
- **चौड़ाई** → 1 राजू
- **निवास** → दो से पाँच इन्द्रिय जीव

सूक्ष्म स्थावर जीव सर्व लोक में ठसाठस भरे हैं एवं त्रस जीव सामान्य रुप से त्रसनाड़ी में ही पाए जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अधो लोक

कहाँ है	आकार	ऊँचाई	लम्बाई	चौड़ाई	घनफल	निवास
मेरु की जड़ से नीचे	आधा मृदंग	7 राजू सर्वत्र	7 राजू सर्वत्र	4 राजू औसत	196 घनराजू	एकेन्द्रिय, नारकी, भवनवासी, व्यंतर देव

तल में = 7 राजू

ऊपर = 1 राजू

औसत = $\frac{7+1}{2} = \frac{8}{2}$ = 4 राजू

रत्नशर्कराबालुकापङ्कधूमतमोमहातमः प्रभाभूमयो घनाम्बुवाताकाशप्रतिष्ठाः सप्ताधोऽधः ।।1।।

सूत्रार्थ - रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, बालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और महातमःप्रभा - ये सात भूमियाँ घनाम्बु, वात और आकाश के सहारे स्थित हैं तथा क्रम से नीचे-नीचे हैं।।1।।

तासु त्रिंशत्पञ्चविंशतिपञ्चदशदशत्रिपञ्चोनैकनरकशतसहस्राणि पञ्च चैव यथाक्रमम्।।2।।

सूत्रार्थ - उन भूमियों में क्रम से तीस लाख, पच्चीस लाख, पन्द्रह लाख, दस लाख, तीन लाख, पाँच कम एक लाख और पाँच नरक हैं।।2।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वात वलय

लोक

↓ का आधार

घनोदधि वातवलय = ठोस वायु + जल का घेरा = वाष्प

↓ का आधार

घन वातवलय = ठोस वायु का घेरा = मोटी हवा

↓ का आधार

तनु वातवलय = पतली वायु का घेरा = पतली हवा

↓ का आधार

आकाश

नरकों का वर्णन

पृथिवियों के सार्थक नाम	रूढ़ी नाम	पथिवियों की मोटाई (योजन में)	बिलों की संख्या	पाथड़े (पटल)	अवधिज्ञान	
					उत्कृष्ट क्षेत्र	उत्कृष्ट काल
रत्न प्रभा	धम्मा	1,80,000	30 लाख	13	1 योजन	भिन्न अन्तर्मुहूर्त
शर्करा प्रभा	वंशा	32,000	25 लाख	11	3 1/2 कोस	यथा
बालुका प्रभा	मेघा	28,000	15 लाख	9	3 कोस	योग्य
पंक प्रभा	अंजना	24,000	10 लाख	7	2 1/2 कोस	अन्तर्मुहूर्त
धूम प्रभा	अरिष्टा	20,000	3 लाख	5	2 कोस	
तम प्रभा	मघवी	16,000	5 कम 1 लाख	3	1 1/2 कोस	
महातम प्रभा	माघवी	8,000	5	1	1 कोस	अन्तर्मुहूर्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

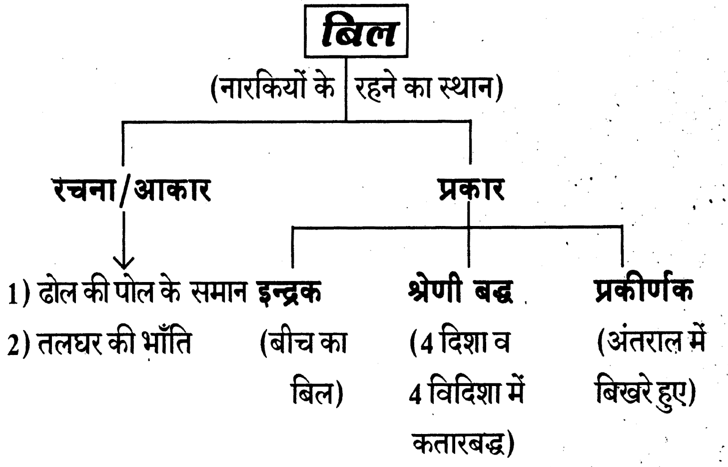

सूत्र क्रमांक 3 से 5 तक के लिए आगे देखें!

तेष्वेकत्रिसप्तदशसप्तदशद्वाविंशतित्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परास्थितिः ||6||

सूत्रार्थ - उन नरकों में जीवों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस और तैंतीस सागरोपम है||6||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सात नरक	भाव लेश्या	शरीर की ऊँचाई (उत्कृष्ट)	उत्कृष्ट आयु	लगातार उसी नरक में उत्पत्ति	किस नरक से निकल कर क्या नहीं होता है?	किस जीव की कौनसे नरक तक जाने की शक्ति है
प्रथम नरक	जघन्य कापोत	7 धनुष 3 हाथ 6 अंगुल	1	8 बार		असैनी पंचेन्द्रिय
द्वितीय नरक	मध्यम कापोत	15 धनुष 2 हाथ 12 अंगुल	3	7 बार		गोह, सरीसर्प
तृतीय नरक	उत्कृष्ट कापोत, जघन्य नील	31 धनुष 1 हाथ	7	6 बार		पक्षी
चतुर्थ नरक	मध्यम नील	62 धनुष 2 हाथ	10	5 बार	तीर्थंकर	सर्प
पंचम नरक	उत्कृष्ट नील, जघन्य कृष्ण	125 धनुष	17	4 बार	चरम शरीरी	सिंह
षष्ठ नरक	मध्यम कृष्ण	250 धनुष	22	3 बार	भावलिंगी मुनि	स्त्री
सप्तम नरक	उत्कृष्ट कृष्ण	500 धनुष	33	2 बार	2-5 गुण-स्थानवर्ती	पुरुष, मत्स्य

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य लेश्या

* सातों नरक के नारकियों के शरीर का रंग **अति कृष्ण** होता है।

आयु

* पहले नरक की **जघन्य आयु** 10,000 वर्ष है।
* पहले-पहले नरक की उत्कृष्ट आयु में 1 समय अधिक करने पर आगे-आगे के नरक की जघन्य आयु होती है।

नरक से निकला जीव कहाँ उत्पन्न होता है

मनुष्य गति — तिर्यंच गति

कर्मभूमिज संज्ञी पर्याप्त गर्भज ही होता है।

सातवें नरक से निकला जीव नियम से तिर्यंच ही होता है।

नरक से निकला जीव क्या नहीं होता है

- नारकी
- देव
- एकेन्द्रिय से असैनी पंचेन्द्रिय
- नारायण
- प्रतिनारायण
- बलभद्र
- चक्रवर्ती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारका- नित्याशुभतरलेश्यापरिणामदेहवेदनाविक्रियाः।।3।।

सूत्रार्थ - नारकी निरन्तर अशुभतर लेश्या, परिणाम, देह, वेदना, और विक्रियावाले हैं।।3।।

परस्परोदीरितदुःखाः।।4।।

सूत्रार्थ - तथा वे परस्पर उत्पन्न किये गये दुःखवाले होते हैं।।4।।

संक्लिष्टासुरोदीरितदुःखाश्च प्राक् चतुर्थ्याः।।5।।

सूत्रार्थ - और चौथी भूमि से पहले तक वे संक्लिष्ट असुरों के द्वारा उत्पन्न किये गये दुःखवाले भी होते हैं।।5।।

नारकियों के दुःख

- **लेश्या**
  - **द्रव्य** (शरीर का रंग - अति कृष्ण)
  - **भाव** (परिणाम - 3 अशुभ)
- **परिणाम** (क्षेत्र का अशुभ स्पर्श, रस गंध, वर्ण)
- **देह** (हुंडक संस्थान, कुधातुओं सहित)
- **वेदना** (शीत, उष्ण, रोग, भूख, प्यास आदि)
- **विक्रिया** (अशुभ अपृथक् विक्रिया)
- **परस्पर** (श्वान की भाँति लड़ते हैं)
- **देवकृत** (असुर कुमार देव आपस में लड़ाते हैं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नारकियों द्वारा परस्पर दिए जाने वाले दुःख	
1.	गर्म लोहमय रस पिलाना,
2.	अग्निरूप लाल तप्त लोहे के खम्भों से आलिंगन कराना,
3.	कूट - शाल्मलि वृक्ष के ऊपर चढ़ाना - उतारना,
4.	लोहमय घनों से पीटना,
5.	वसूले से छीलना,
6.	चमड़ी उतारना,
7.	गर्म तेल से नहलाना,
8.	लोहे के गर्म कड़ाहों में पकाना,
9.	भाड़ में सेंकना,
10.	घानी में पेलना,
11.	शूली पर चढ़ाना,
12.	भाले से बींधना,
13.	करोंत से चीरना,
14.	अंगारों पर लिटाना,
15.	गर्म रेत पर चलाना,
16.	वैतरणी में स्नान कराना,
17.	तलवार जैसे पत्तों के वन में प्रवेश कराना,
18.	व्याघ्र, रीछ, सिंह, श्वान, सियार, सियारनी, बिलाव, नेवला, सर्प, कौवा, गीध, चमगादड़, उल्लू, बाज, आदि बनकर एक - दूसरे को अनेक प्रकार के दुख देना,
19.	दूर से देख क्रोध करना,
20.	पास आने पर मारना,
21.	क्रोध से भरे वचन कहना,
22.	विक्रिया से शस्त्र बनकर मारना, काटना, छेदना, भेदना आदि।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

जम्बूद्वीपलवणोदादयः शुभनामानो द्वीपसमुद्राः।।7।।

सूत्रार्थ - जम्बूद्वीप आदि शुभ नाम वाले द्वीप और लवणोद आदि शुभ नाम वाले समुद्र हैं।।7।।

द्विर्द्विर्विष्कम्भाः पूर्वपूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः।।8।।

सूत्रार्थ - वे सभी द्वीप और समुद्र दूने-दूने व्यासवाले, पूर्व-पूर्व द्वीप और समुद्र को वेष्टित करनेबाले और चूड़ी के आकार वाले हैं।।8।।

मध्य (तिर्यक्) लोक

कहाँ है	**ऊँचाई**	**लम्बाई**	**चौड़ाई**	**निवास**	**रचना**
(मेरु की जड़ से मेरु की चूलिका तक)	(1 लाख 40 योजन)	(1 राजू)	(1 राजू)	* मनुष्य * तिर्यंच * देव (भवनवासी व्यंतर, ज्योतिषी)	

रचना

असंख्यात द्वीप - समुद्र
- एक - दूसरे को घेरे हुए हैं।
- उत्तरोत्तर दूने - दूने व्यास वाले हैं।
- सभी शुभ नाम वाले हैं।

4 कोने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तन्मध्ये मेरुनाभिर्वृत्तो योजनशतसहस्रविष्कम्भो जम्बूद्वीपः ।।9।।

सूत्रार्थ - उन सबके बीच में गोल और एक लाख योजन विष्कम्भवाला जम्बूद्वीप है। जिसके मध्य में नाभि के समान मेरु पर्वत है।।9।।

जम्बूद्वीप

- **विस्तार** (1 लाख योजन व्यास)
- **मेरु** (सुर्दशन मेरु नाभि के समान मध्य में)
- **क्षेत्र** (भरतादि 7)
- **पर्वत** (हिमवनादि 6)
- **सरोवर** (पद्मादि 6)
- **नदियाँ** (गंगा-सिंधु आदि 14)

सुदर्शन मेरु

- **जड़** → चित्रा पृथिवी में 1000 यो.
- **ऊँचाई** → + 99,000 योजन
- **चूलिका** → +40 योजन
- **कुल ऊँचाई** → =1 लाख 40 योजन
- **वन** → 4
- **अकृत्रिम चैत्यालय** → 16 (प्रत्येक वन में प्रत्येक दिशा में 1 =4×4) (पंच मेरु पर 16×5 = 80)

चार वन

- **भद्रशाल** → चित्रा पृथिवी पर
- **नन्दन** → भद्रशाल से 500 योजन ऊपर
- **सौमनस** → नन्दन से 62500 योजन ऊपर
- **पाण्डुक** → सौमनस से 36000 योजन ऊपर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भरतहैमवतहरिविदेहरम्यकहैरण्यवतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।।10।।

सूत्रार्थ - भरतवर्ष, हैमवतवर्ष, हरिवर्ष, विदेहवर्ष, रम्यकवर्ष, हैरण्यवतवर्ष और ऐरावतवर्ष - ये सात क्षेत्र हैं।।10।।

जम्बूद्वीप के 7 क्षेत्र

भरत **हैमवत** **हरि** **विदेह** **रम्यक** **हैरण्यवत** **ऐरावत**

भरत ↓
* 5 म्लेच्छ खण्ड
* 1 आर्य खण्ड
(यहाँ हम रहते हैं)

विदेह ↓
32 देश
↓
प्रत्येक देश में
* 5 म्लेच्छ खण्ड
* 1 आर्य खण्ड
(विद्यमान
तीर्थंकर यहाँ हैं)

ऐरावत ↓
* 5 म्लेच्छ खण्ड
* 1 आर्य खण्ड

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महाहिमवन्निषधनीलरुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः ||11||

सूत्रार्थ - उन क्षेत्रों को विभाजित करने वाले और पूर्व-पश्चिम लम्बे ऐसे हिमवान, महाहिमवान, निषध, नील, रुक्मी और शिखरी - ये छह वर्षधर पर्वत हैं ||11||

हेमार्जुनतपनीयवैडूर्य्यरजतहेममयाः ||12||

सूत्रार्थ - ये छहों पर्वत क्रम से सोना, चाँदी, तपाया हुआ सोना, वैडूर्यमणि, चाँदी और सोना इनके समान रंगवाले हैं ||12||

मणिविचित्रपार्श्वा उपरि मूले च तुल्यविस्ताराः ||13||

सूत्रार्थ - इनके पार्श्व मणियों से चित्र-विचित्र हैं तथा वे ऊपर, मध्य और मूल में समान विस्तारवाले हैं ||13||

पर्वत/ कुलाचल

नाम	रंग	लम्बाई	आकार	चौड़ाई	विशेष
हिमवन	सोना	पूर्व से पश्चिम समुद्र तक	दीवार की भाँति	ऊपर, नीचे व मूल में एक जैसा	आजू-बाजू में विचित्र मणियों से जड़ा हुआ
महा हिमवन	चाँदी				
निषध	तपाया हुआ सोना				
नील	वैडूर्य नील मणि				
रुक्मि	चाँदी				
शिखरी	सोना				

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पद्ममहापद्मतिगिञ्छकेशरिमहापुण्डरीकपुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि।।14।।

सूत्रार्थ - इन पर्वतों के ऊपर क्रम से पद्म, महापद्म, तिगिंछ, केसरी, महापुण्डरीक और पुण्डरीक - ये तालाब हैं।।14।।

प्रथमो योजनसहस्रायामस्तदर्धविष्कम्भो ह्रदः।।15।।

सूत्रार्थ - पहला तालाब एक हजार योजन लम्बा और इससे आधा चौड़ा है।।15।।

दशयोजनावगाहः।।16।।

सूत्रार्थ - तथा दस योजन गहरा है।।16।।

तन्मध्ये योजनं पुष्करम्।।17।।

सूत्रार्थ - इसके बीच में एक योजन का कमल है।।17।।

तद्द्विगुणद्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च।।18।।

सूत्रार्थ - आगे के तालाब और कमल दूने-दूने हैं।।18।।

तन्निवासिन्यो देव्यः श्रीह्रीधृतिकीर्तिबुद्धिलक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिकपरिषत्काः।।19।।

सूत्रार्थ - इनमें श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी - ये देवियाँ सामानिक और परिषद् देवों के साथ निवास करती हैं तथा इनकी आयु एक पल्योपम है।।19।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सरोवर

क्र.	नाम	लम्बाई (योजन में)	चौड़ाई (योजन में)	गहराई (योजन में)	कमल व्यास (योजन में)	देवी नि
1	पद्म	1,000 (40 लाख मील)	500 (20 लाख मील)	10 (40,000 मील)	1 (4,000 मील)	श्री
2	महापद्म	2,000	1,000	20	2	ह्री
3	तिगिञ्छ	4,000	2,000	40	4	धृति
4	केशरी	4,000	2,000	40	4	कीर्ति
5	महा पुण्डरीक	2,000	1,000	20	2	बुद्धि
6	पुण्डरीक	1,000	500	10	1	लक्ष्मी
इन सरोवरों में रहने वाली देवियों की आयु एक पल्य की है। वे सामानिक एवं पारिषद जाति के देवों के साथ रहती हैं, जिनके छोटे कमल हैं।						

गङ्गासिन्धुरोहिद्रोहितास्याहरिद्धरिकान्तासीतासीतोदानारीनरकान्ता सुवर्णरूप्यकूलारक्तारक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः।।20।।

सूत्रार्थ - इन भरत आदि क्षेत्रों में से गंगा, सिन्धु, रोहित, रोहितास्या, हरित, हरिकान्ता, सीता, सीतोदा, नारी, नरकान्ता, सुवर्णकूला, रूप्यकूला, रक्ता और रक्तोदा नदियाँ बहती हैं।।20।।

द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः।।21।।

सूत्रार्थ - दो-दो नदियों में से पहली-पहली नदी पूर्व समुद्र को जाती है।।21।।

शेषास्त्वपरगाः।।22।।

सूत्रार्थ - किन्तु शेष नदियाँ पश्चिम समुद्र को जाती हैं।।22।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्दशनदीसहस्रपरिवृता गङ्गासिन्ध्वादयो नद्यः ||23||

सूत्रार्थ - गंगा और सिन्धु आदि नदियों की चौदह-चौदह हजार परिवार नदियाँ हैं||23||

14 नदियाँ

सरोवर (जिससे नदियाँ निकली हैं) नाम	नदियों के नाम	बहने का क्षेत्र	किस दिशा में जाती हैं	परिवार नदियाँ
पद्म	सिंधु	भरत	दो-दो नदियों	14,000
	गंगा	,,	के युगलों में	,,
	रोहितास्या	हैमवत		28,000
महापद्म	रोहित	,,	से पहली-	,,
	हरिकान्ता	हरि	पहली नदी	56,000
तिगिञ्छ	हरित्	,,	(जैसे - गंगा)	,,
	सीतोदा	विदेह	पूर्व समुद्र में	1,12,000
केशरी	सीता	,,		,,
	नरकान्ता	रम्यक	एवं बाद-बाद	56,000
महा पुण्डरीक	नारी	,,	की नदी	,,
	रूप्यकूला	हैरण्यवत	(जैसे - सिंधु)	28,000
पुण्डरीक	सुवर्णकूला	,,	पश्चिम समुद्र	,,
	रक्तोदा	ऐरावत	में मिलती है।	14,000
	रक्ता	,,		,,

भरतः षड्विंशतिपञ्चयोजनशतविस्तारः षट्चैकोनविंशतिभागा योजनस्य||24||

सूत्रार्थ - भरत क्षेत्र का विस्तार पाँच सौ छब्बीस सही छह बटे उन्नीस($526\frac{6}{19}$) योजन है||24||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तद्द्विगुणद्विगुणविस्तारा वर्षधरवर्षा विदेहान्ताः||25||

सूत्रार्थ - विदेह पर्यन्त पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार भरत क्षेत्र के विस्तार से दूना-दूना है||25||

उत्तरा दक्षिणतुल्याः||26||

सूत्रार्थ - उत्तर के क्षेत्र और पर्वतों का विस्तार दक्षिण के क्षेत्र और पर्वतों के समान है||26||

सूत्र क्रमांक 27 से 31 तक के लिए आगे देखें!

भरतस्य विष्कम्भो जम्बूद्वीपस्य नवतिशतभागः||32||

सूत्रार्थ - भरतक्षेत्र का विस्तार जम्बूद्वीप का एक सौ नब्बेवाँ भाग है||32||

क्षेत्रों का विस्तार

भरत क्षेत्र	526 6/19 योजन	**जम्बूद्वीप का** 190 वाँ भाग
हिमवन पर्वत	आगे - आगे के पर्वत और क्षेत्र का दूना-2 विस्तार विदेह तक	,, 2/190 ,,
हैमवत क्षेत्र		,, 4/190 ,,
महा हिमवन पर्वत		,, 8/190 ,,
हरि क्षेत्र		,, 16/190 ,,
निषध पर्वत		,, 32/190 ,,
विदेह क्षेत्र		,, 64/190 ,,
नील पर्वत	विदेह से आगे-आगे के पर्वत और क्षेत्रों का विस्तार आधा-आधा है।	उत्तर की रचना दक्षिण जैसी है।
रम्यक क्षेत्र		
रुक्मि पर्वत		
हैरण्यवत क्षेत्र		
शिखरी पर्वत		
ऐरावत क्षेत्र		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भरतैरावतयोर्वृद्धिह्रासौ षट्समयाभ्यामुत्सर्पिण्यवसर्पिणीभ्याम्।।27।।

सूत्रार्थ - भरत और ऐरावत क्षेत्रों में उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी के छह समयों की अपेक्षा वृद्धि और ह्रास होता रहता है।।27।।

काल चक्र परिवर्तन

10 कोड़ा कोड़ी सागर	उत्सर्पिणी	जीवों के शरीर की ऊँचाई आयु आदि की क्रमशः वृद्धि
10 कोड़ा कोड़ी सागर	अवसर्पिणी	जीवों के शरीर की ऊँचाई आयु आदि की क्रमशः हानि
20 कोड़ा कोड़ी सागर	**= 1 कल्प काल**	

एकद्वित्रिपल्योपमस्थितयो हैमवतकहारिवर्षक दैवकुरवकाः।।29।।

सूत्रार्थ - हैमवत, हरिवर्ष और देवकुरु के मनुष्यों की स्थिति क्रम से एक, दो और तीन पल्योपम प्रमाण है।।29।।

तथोत्तराः।।30।।

सूत्रार्थ - दक्षिण के समान उत्तर में (स्थिति) है।।30।।

विदेहेषु संख्येयकालाः।।31।।

सूत्रार्थ - विदेहों में संख्यात वर्ष की आयु वाले मनुष्य हैं।।31।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	क्र.	कालों के नाम	स्थिति प्रमाण	मनुष्यों की आयु	शरीर की ऊँचाई	वर्ण	आहार
भोग-भूमि	1.	**सुषमा सुषमा**	4 कोड़कोड़ी सागर	3 पल्य-2 पल्य	3 कोस-2 कोस	उदित सूर्य सदृश	3 दिन बाद बेर जितना
	2.	**सुषमा**	3 कोड़ाकोड़ी सागर	2 पल्य- 1पल्य	2 कोस-1 कोस	पूर्ण चन्द्र सदृश	2 दिन बाद बहेड़ा जितना
	3.	**सुषमा दुषमा**	2 कोड़ाकोड़ी सागर	1 पल्य- 1 पूर्व कोटी	1 कोस- 500 धनुष	प्रियङ्गु (हरा) सदृश	1 दिन बाद आँवले जितना
कर्म-भूमि	4.	**दुषमा सुषमा**	42,000 वर्ष कम 1 कोड़ा-कोड़ी सागर	1 पूर्व कोटी-120 वर्ष	500 धनुष- 7 हाथ	पाँचों वर्ण	प्रतिदिन 1 बार
	5.	**दुषमा**	21,000 वर्ष	120 वर्ष-20 वर्ष	7 हाथ- 2 हाथ	पाँचों वर्ण कांतिहीन	बहुत बार
	6.	**दुषमा दुषमा**	21,000 वर्ष	20 वर्ष-15 वर्ष	2 हाथ- 1 हाथ	धूम्रवर्ण सदृश	बारम्बार, तीव्र गृद्धता के साथ

काल परिवर्तन भरत-ऐरावत क्षेत्रों में ही होता है। यह तालिका अवसर्पिणी काल की है, उत्सर्पिणी में इससे ठीक विपरीत होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः ||28||

सूत्रार्थ - भरत और ऐरावत के सिवा शेष भूमियाँ अवस्थित हैं||28||

अवस्थित भूमियों के काल

क्षेत्र का नाम	काल
देवकुरु-उत्तर कुरु	प्रथम काल-उत्तम भोगभूमि
हरि-रम्यक	दूसरा काल-मध्यम भोगभूमि
हैमवत-हैरण्यवत	तीसरा काल-जघन्य भोगभूमि
विदेह	चौथे काल की आदि
कुभोग भूमि-अंतर्द्वीपज	तीसरा काल तुल्य
मानुषोत्तर पर्वत से स्वयंप्रभ पर्वत तक असंख्यात द्वीप एवं समुद्र	तीसरा काल तुल्य
अंत का आधा स्वयंभूरमण द्वीप, स्वयंभूरमण समुद्र एवं चार कोने	पंचम काल तुल्य
देव गति	प्रथम काल तुल्य
नरक गति	छठा काल तुल्य

भरत एवं ऐरावत के पाँच म्लेच्छ खण्ड एवं विद्याधरों की श्रेणियाँ	चौथे काल के आदि से लगाकर उसी के अंत तक हानि-वृद्धि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्विर्धातकीखण्डे ।।33।।

सूत्रार्थ - धातकीखण्ड में क्षेत्र तथा पर्वत आदि जम्बूद्वीप से दूने हैं।।33।।

पुष्करार्धे च।।34।।

सूत्रार्थ - पुष्करार्ध में उतने ही क्षेत्र और पर्वत हैं।।34।।

प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः।।35।।

सूत्रार्थ - मानुषोत्तर पर्वत के पहले तक ही मनुष्य हैं।।35।।

अढ़ाई द्वीप (मनुष्य क्षेत्र/नर लोक)

- **विस्तार** → 45 लाख योजन
- **समुद्र** → लवण, कालोदधि
- **द्वीप** → जम्बूद्वीप, धातकी खण्ड, आधा पुष्करवर
- **रचना** →
  - जम्बूद्वीप → 1 मेरु संबंधी
  - धातकी खण्ड → 2 मेरु, जम्बूद्वीप से दूने क्षेत्रादि
  - आधा पुष्करवर → 2 मेरु, धातकी खण्ड जितने क्षेत्र आदि

मनुष्य मानुषोत्तर पर्वत तक ही होते हैं।

आर्याम्लेच्छाश्च।।36।।

सूत्रार्थ - मनुष्य दो प्रकार के हैं- आर्य और म्लेच्छ।।36।।

मनुष्यों के भेद

- **आर्य** (जिसमें धर्म प्रवृत्ति हो)
  - ऋद्धि प्राप्त
  - ऋद्धि अप्राप्त
- **म्लेच्छ** (जिसमें धर्म प्रवृत्ति न हो)
  - **कर्म भूमिज** (म्लेच्छ खण्ड 850)
  - **अंतर्द्वीपज** (कुभोग भूमि 96)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कुभोगभूमि मनुष्य

मनुष्य कैसे ?

1. एक जाँघ वाले, एक टाँग वाले, पूँछ वाले, गूँगे, सींग वाले मनुष्य
2. खरगोश के समान, साँकल के समान लम्बे कान वाले, एक कान वाले (जिसे ओढ़ व बिछा भी लें) मनुष्य
3. घोड़े, सिंह, कुत्ता, बकरा, हाथी, गाय, मेढ़ा, मछली, भैंसा, सुअर, व्याघ्र, कौआ, बन्दर के समान मुख वाले मनुष्य
4. मेघ, बिजली, काल (मगर), दर्पण मुख वाले मनुष्य

अन्य विशेषता

1. गुफाओं में व पेड़ों पर रहते हैं।
2. मिट्टी का, फूलों का व फलों का आहार करते हैं।
3. सबकी आयु 1 पल्य है।

भरतैरावतविदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरूत्तरकुरुभ्यः ।।37।।

सूत्रार्थ - देवकुरु और उत्तरकुरु के सिवा भरत, ऐरावत और विदेह - ये सब कर्मभूमियाँ हैं।।37।।

ढाईद्वीप में कर्मभूमि एवं भोग भूमि

15 कर्म-भूमियाँ	**जहाँ असि, मसि, कृषि आदि कार्य हो** पाँच भरत - 5 पाँच ऐरावत - 5 पाँच विदेह - 5 **कुल** - **15**
30 भोग - भूमियाँ	**जहाँ 10 प्रकार के कल्पवृक्षों से भोग सामग्री प्राप्त हो** जघन्य भोगभूमि - हैमवत एवं हैरण्यवत - 2×5 = 10 मध्यम भोगभूमि - हरि एवं रम्यक - 2×5 = 10 उत्कृष्ट भोगभूमि - देवकुरु एवं उत्तरकुरु - 2×5 = 10 **कुल = 30**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते।।38।।

सूत्रार्थ-मनुष्यों की उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्योपम और जघन्य अन्तर्मुहूर्त है।।38।।

तिर्यग्योनिजानाञ्च।।39।।

सूत्रार्थ - तिर्यंचों की स्थिति भी उतनी ही है।।39।।

मनुष्य एवं तिर्यंच आयु

जघन्य
↓
अंतर्मुहूर्त
(श्वास का 18 वाँ भाग)

उत्कृष्ट
↓
3 पल्य
(असंख्यात वर्ष)

स्वामी - लब्धि अपर्याप्तक ... उत्कृष्ट भोगभूमिया

तिर्यंचों की आयु - विशेष

जीव	उत्कृष्ट आयु	जीव	[illegible]
मृदु(शुद्ध)पृथ्वीकायिक	12000 वर्ष	तीन इन्द्रिय	49 दिन
कठोर पृथ्वीकायिक	22000 वर्ष	चार इन्द्रिय	6 मास
जलकायिक	7000 वर्ष	पंचेन्द्रिय जलचर	1 कोटि पूर्व
वायुकायिक	3000 वर्ष	सरीसर्प रेंगने वाले पशु	9 पूर्वांग
अग्निकायिक	3 दिन	सर्प	42000 वर्ष
वनस्पतिकायिक	10000 वर्ष	पक्षी	72000 वर्ष
दो इन्द्रिय	12 वर्ष	चौपाये पशु	3 पल्य
सभी की जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्त है।			

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

1 पूर्वांग = 84,00,000 वर्ष

1 पूर्व = 84,00,000 पूर्वांग = 70,56,000 करोड़ वर्ष

3 प्रकार के पल्य

नाम	व्यवहार पल्य	उद्धार पल्य	अद्धा पल्य
स्वरूप	2000 कोस, गोल गहरे गड्ढे में से प्रति 100 वर्ष में रोम निकालने जितने वर्ष	व्यवहार पल्य से असंख्यात कोटी गुणा	उद्धार पल्य से असंख्यात गुणा
कार्य	आगे के 2 पल्य निकालने आदि के लिए	द्वीप-समुद्रों की गणना के लिए	आयु, कर्म स्थिति शेष सभी स्थानों की गणना के लिए

सागर

अद्धा सागर = 10 कोड़ा कोड़ी × अद्धा पल्य

सूत्र से अन्य रचनाएँ	सूत्र से अन्य विषय
1. विजयार्द्ध पर्वत	1. तीर्थंकरों की गणना
2. वृषभाचल पर्वत	2. त्रिकाल चौबीसी
3. गजदंत पर्वत	3. तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालय
4. जम्बूवृक्ष	4. मध्यलोक के अकृत्रिम चैत्यालय
5. विदेह क्षेत्र नगरियाँ	
अ) वक्षार गिरि	
ब) विभंगा नदी	
स) 6 खण्ड	
6. नाभिगिरि	
7. इष्वाकार पर्वत	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तीर्थंकरों की गणना

क्षेत्र	कम से कम	ज्यादा से ज्यादा
पाँच विदेह	20 (8 नगरियों के बीच में 1)	160 (32 नगरियों में प्रत्येक में 1)
पाँच भरत	-	5
पाँच ऐरावत	-	5
कुल	**20**	**170**

त्रिकाल चौबीसी

5 भरत	5	
5 ऐरावत	+ 5	= 10
भूत, भविष्य एवं वर्तमान सम्बन्धी	×3	= 30
चौबीस तीर्थंकर		×24
अढ़ाई द्वीप की त्रिकाल चौबीसी	=	720

तीन लोक के अकृत्रिम चैत्यालय

लोक का नाम	अकृत्रिम चैत्यालय
अधोलोक	7,72,00,000
ऊर्ध्वलोक	84,97,023
मध्यलोक	458
कुल	**8,56,97,481**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मध्यलोक के 458 अकृत्रिम चैत्यालय

एक मेरु सम्बन्धी चैत्यालय	
मेरु पर	16
कुलाचल	6
गजदंत	4
विजयार्द्ध	34
वक्षारगिरि	16
जम्बूवृक्ष	1
शाल्मली वृक्ष	1
कुल	78
पंच मेरु के	× 5
	390
पंचमेरु सम्बन्धी	390
इष्वाकार पर्वत	4
मानुषोत्तर पर्वत	4
नन्दीश्वर द्वीप	52
कुण्डलवर द्वीप (11वाँ द्वीप)	4
रुचिकवर द्वीप (13 वाँ द्वीप)	4
कुल	458

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चतुर्थ अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
ऊर्ध्व लोक (देवगति) का वर्णन			
देवों के प्रकार, लेश्या, सामान्य भेद	1-5	5	69-72
इन्द्रों की व्यवस्था	6	1	72
देवों का काम सेवन	7-9	3	73
देवों के भेदों के नाम	10-12	3	69-70
ज्योतिषी देवों का गमन एवं			
काल विभाग	13-15	3	74
वैमानिक देवों का वर्णन	16-26		74-82
सामान्य कथन एवं भेद	16-17,23	3	74
रहने का स्थान एवं नाम	18-19	2	74-78
उत्तरोत्तर अधिकता एवं हीनता	20-21	2	80
लेश्या	22	1	75, 77
लौकान्तिक देव	24-25	2	81
द्विचरम भव कथन	26	1	82
तिर्यंच कौन	27	1	82
देवों की आयु	28-42	15	75,79,85-87
	कुल	42	

ऊर्ध्वलोक

कहाँ है	आकार	ऊँचाई	लम्बाई	चौड़ाई	घनफल	निवास
↓	↓	↓	↓	↓	↓	↓
मेरु की चूलिका से एक बाल ऊपर से लोक के शिखर तक	मृदंगाकार	7 राजू सर्वत्र	7 राजू सर्वत्र	3 राजू औसत ↓ $\frac{1+5}{2} = \frac{6}{2}$ = 3 राजू	147 घनराजू	* एकेन्द्रिय * वैमानिक देव * सिद्ध भगवान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवाश्चतुर्णिकायाः ।।1।।

सूत्रार्थ - देव चार निकाय (समूह) वाले हैं।।1।।

आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।।2।।

सूत्रार्थ - आदि के तीन निकायों में पीत पर्यन्त चार लेश्याएँ हैं।।2।।

दशाष्टपञ्चद्वादशविकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ।।3।।

सूत्रार्थ - वे कल्पोपपन्न देव तक के चार निकाय के देव क्रम से दस, आठ, पाँच और बारह भेद वाले हैं।।3।।

इन्द्रसामानिकत्रायस्त्रिंशपारिषदात्मरक्षलोकपालानीकप्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ।।4।।

सूत्रार्थ - उक्त दस आदि भेदों में-से प्रत्येक इन्द्र, सामानिक, त्रायस्त्रिंश, पारिषद, आत्मरक्ष, लोकपाल, अनीक, प्रकीर्णक, आभियोग्य और किल्विषिक रूप हैं।।4।।

त्रायस्त्रिंशलोकपालवर्ज्या व्यन्तरज्योतिष्काः ।।5।।

सूत्रार्थ - किन्तु व्यन्तर और ज्योतिष्क देव त्रायस्त्रिंश और लोकपाल इन दो भेदों से रहित हैं।।5।।

सूत्र क्रमांक 6 से 9 तक के लिए आगे देखें !

भवनवासिनोऽसुरनागविद्युत्सुपर्णाग्निवातस्तनितोदधिद्वीपदिक्कुमाराः ।।10।।

सूत्रार्थ - भवनवासी देव दस प्रकार के हैं - असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, सुपर्णकुमार, अग्निकुमार, वातकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीपकुमार और दिक्कुमार।।10।।

व्यन्तराः किन्नरकिम्पुरुषमहोरगगंधर्वयक्षराक्षसभूतपिशाचाः ।।11।।

सूत्रार्थ - व्यन्तर देव आठ प्रकार के हैं - किन्नर, किम्पुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच।।11।।

ज्योतिष्काः सूर्य्याचन्द्रमसौग्रहनक्षत्रप्रकीर्णकतारकाश्च ।।12।।

सूत्रार्थ - ज्योतिषी देव पाँच प्रकार के हैं - सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह, नक्षत्र और प्रकीर्णक तारे।।12।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

देवों के प्रकार (निकाय)

नाम	भवनवासी	व्यंतर	ज्योतिषी	वैमानिक
स्वरूप	जो भवनों में निवास करते हैं	जिनका नाना प्रकार के देशों में निवास है	जो ज्योतिर्मय विमानों में निवास करते हैं	जो विमानों में निवास करते हैं
भेद	10	8	5	12 (कल्पोपपन्न तक)
भेदों के नाम	देखिए सूत्रार्थ 10	11	12	17
प्रत्येक के सामान्य भेद (इन्द्र, सामानिक आदि)	10	8 (त्रायस्त्रिंश व लोकपाल को छोड़कर शेष सभी)	8 (त्रायस्त्रिंश व लोकपाल को छोड़कर शेष सभी)	10

10 सामान्य भेद

भेद	दृष्टांत
इन्द्र	राजा
सामानिक	पिता, गुरु, उपाध्याय
त्रायस्त्रिंश	मंत्री, पुरोहित
पारिषद	सभा सदस्य (मित्र, परिजन)
आत्मरक्ष	अंगरक्षक
लोकपाल	कोतवाल
अनीक	सात प्रकार की सेना
प्रकीर्णक	नगरवासी
आभियोग्य	हाथी - घोड़ा आदि वाहन
किल्विषिक	चाण्डालादिक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चार निकाय के देवों का निवास

निकाय	भवनवासी	व्यंतर	ज्योतिषी	वैमानिक
लोक	* अधोलोक * मध्यलोक	* अधोलोक * मध्यलोक	* मध्यलोक	* ऊर्ध्व लोक
निवास स्थान	*अधोलोक* * असुरकुमार रत्नप्रभा पृथिवी के पंक भाग में * शेष 9 प्रकार - रत्नप्रभा पृथिवी के खरभाग में *मध्यलोक* * असुर कुमार भवनों में * शेष 9 प्रकार - भवन, भवन पुर और आवासों में	*अधोलोक* * राक्षस- रत्नप्रभा पृथ्वी के पंक भाग में * शेष 7 प्रकार रत्नप्रभा पृथ्वी के खर भाग में *मध्यलोक* * भवन भवनपुर और आवास * चित्रा पृथिवी पर द्वीप, पर्वत, समुद्र, देश, ग्राम, नगर, गृहों के आँगन, रास्ता, गली, बाग, वन आदि में	* चित्रा पृथिवी से 790 योजन ऊपर से 900 योजन तक है * तिर्यक् रूप से घनोदधि वातवलय तक है	* सौधर्म स्वर्ग के प्रथम पटल के विमान से प्रारम्भ कर सर्वार्थसिद्धि विमान तक

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवनवासी, व्यंतर, ज्योतिषी (भवनत्रिक) देवों की लेश्याएँ

- **द्रव्य लेश्या**
  - 6 प्रकार की
- **भाव लेश्या**
  - अपर्याप्त अवस्था
    - कृष्ण
    - नील
    - कापोत
  - पर्याप्त अवस्था
    - जघन्य पीत

पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ||6||

सूत्रार्थ - प्रथम दो निकायों में दो-दो इन्द्र हैं||6||

इन्द्रों की व्यवस्था

नाम	भेद	प्रत्येक में इन्द्र	प्रत्येक में प्रतीन्द्र (राजकुमार तुल्य)	कुल इन्द्र एवं प्रतीन्द्र
भवनवासी	10	2	2	=10×2×2=40
व्यंतर	8	2	2	= 8×2×2=32
ज्योतिषी		(चन्द्रमा)	+(सूर्य)	= 2
वैमानिक	शुरू के 4 स्वर्ग = 4 इन्द्र बीच के 8 स्वर्ग = 4 इन्द्र अंत के 4 स्वर्ग = 4 इन्द्र = 12×2 = 24 (इन्द्र +प्रतीन्द्र)			
मनुष्य	चक्रवर्ती			1
तिर्यंच	सिंह			1
कुल इन्द्र				= 100

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कायप्रवीचारा आ ऐशानात्।।7।।

सूत्रार्थ - ऐशान तक के देव कायप्रवीचार अर्थात् शरीर से विषय-सुख भोगने वाले होते हैं।।7।।

शेषाः स्पर्शरूपशब्दमनः प्रवीचाराः।।8।।

सूत्रार्थ-शेष देव स्पर्श, रूप, शब्द और मन से विषय-सुख भोगने वाले होते हैं।।8।।

परेऽप्रवीचाराः।।9।।

सूत्रार्थ - बाकी के सब देव विषय-सुख से रहित होते हैं।।9।।

प्रवीचार (मैथुन-काम सेवन)

कैसे प्रवीचार	काय	स्पर्श	रूप	शब्द	मन	प्रवीचार रहित
स्वरूप	मनुष्य के समान संक्लेश पूर्वक शरीर के द्वारा	शरीर के स्पर्श करने मात्र से	सुन्दर श्रृंगार, आकार, विलास, चतुर, मनोज्ञ वेश रूप, लावण्य के देखने मात्र से	मधुर गीत, कोमल हास्य, कोमल वचन, आभूषणों की ध्वनि सुनने से	एक-दूसरे का मन में संकल्प मात्र करने से	विषय वेदना का अभाव
कौन-कौन से स्वर्ग में	* भवनवासी * व्यंतर * ज्योतिषी * पहला, दूसरा स्वर्ग (1-2)	तीसरा, चौथा स्वर्ग (3-4)	पाँचवें से आठवाँ स्वर्ग (5-8)	नौवें से बारहवाँ स्वर्ग (9-12)	तेरहवें से सोलहवाँ स्वर्ग (13-16)	कल्पातीत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मेरुप्रदक्षिणा नित्यगतयो नृलोके।।13।।

सूत्रार्थ - ज्योतिषी देव मनुष्यलोक में मेरु की प्रदक्षिणा करते हैं और निरन्तर गतिशील हैं।।13।।

तत्कृतः कालविभागः।।14।।

सूत्रार्थ - उन गमन करने वाले ज्योतिषियों के द्वारा किया हुआ काल विभाग है।।14।।

बहिरवस्थिताः।।15।।

सूत्रार्थ - मनुष्य-लोक के बाहर ज्योतिषी देव स्थिर रहते हैं।।15।।

ज्योतिषी देव

अढ़ाई द्वीप में
- निरंतर गमनशील हैं
- मेरु की प्रदक्षिणा देते हैं
- व्यवहार काल विभाग के हेतु हैं

अढ़ाई द्वीप से बाहर
- अवस्थित

वैमानिकाः।।16।।

सूत्रार्थ - चौथे निकाय के देव वैमानिक हैं।।16।।

कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च।।17।।

सूत्रार्थ - वे दो प्रकार के हैं - कल्पोपपन्न और कल्पातीत।।17।।

सूत्र क्रमांक 18 से 22 तक के लिए आगे देखें!

प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः।।23।।

सूत्रार्थ - ग्रैवेयकों से पहले तक कल्प हैं।।23।।

वैमानिक

कल्पोपपन्न (12)
(इन्द्रादि की व्यवस्था होती है)

कल्पातीत
(अहमिन्द्र - सभी इन्द्र होते हैं, इन्द्रादि 10 प्रकार की व्यवस्था नहीं होती)

उपर्युपरि।।18।।

सूत्रार्थ - वे ऊपर-ऊपर रहते हैं।।18।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सौधर्मैशानसानत्कुमारमाहेन्द्रब्रह्मब्रह्मोत्तरलान्तवकापिष्ठशुक्रमहाशुक्रशतार सहस्रारेष्वानतप्राणतयोरारणाच्युतयोर्नवसु ग्रैवेयकेषु विजयवैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च।।19।।

सूत्रार्थ - सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्म, ब्रह्मोत्तर, लान्तव, कापिष्ठ, शुक्र, महाशुक्र, शतार और सहस्रार तथा आनत-प्राणत, आरण-अच्युत, नौ ग्रैवेयक और विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित तथा सर्वार्थसिद्धि में वे निवास करते हैं।।19।।

पीतपद्मशुक्ललेश्या द्वित्रिशेषेषु।।22।।

सूत्रार्थ - दो, तीन, कल्प युगलों में और शेष में क्रम से पीत, पद्म और शुक्ल लेश्यावाले देव हैं।।22।।

सौधर्मैशानयोः सागरोपमे अधिके।।29।।

सूत्रार्थ - सौधर्म और ऐशान कल्प में दो सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।।29।।

सानत्कुमारमाहेन्द्रयोः सप्त।।30।।

सूत्रार्थ - सानत्कुमार और माहेन्द्र कल्प में सात सागरोपम से कुछ अधिक उत्कृष्ट स्थिति है।।30।।

त्रिसप्तनवैकादशत्रयोदशपञ्चदशभिरधिकानि तु।।31।।

सूत्रार्थ -ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर युगल से लेकर प्रत्येक युगल में आरण-अच्युत तक क्रम से साधिक तीन से अधिक सात सागरोपम, साधिक सात से अधिक सात सागरोपम, साधिक नौ से अधिक सात सागरोपम, साधिक ग्यारह से अधिक सात सागरोपम, तेरह से अधिक सात सागरोपम और पन्द्रह से अधिक सात सागरोपम उत्कृष्ट स्थिति है।।31।।

आरणाच्युतादूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च।।32।।

सूत्रार्थ - आरण-अच्युत के ऊपर नौ ग्रैवेयक में से प्रत्येक में, नौ अनुदिश में, चार विजयादिक में एक-एक सागरोपम अधिक उत्कृष्ट स्थिति है तथा सर्वार्थसिद्धि में पूरी तैंतीस सागरोपम स्थिति है।।32।।

अपरा पल्योपममधिकम्।।33।।

सूत्रार्थ - सौधर्म और ऐशान कल्प में जघन्य स्थिति साधिक एक पल्योपम है।।33।।

परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा।।34।।

सूत्रार्थ - आगे-आगे पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है।।34।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्।।42।।

सूत्रार्थ - सब लौकान्तिकों की स्थिति आठ सागरोपम है।।42।।

वैमानिक देव

नाम	इन्द्र	क्षेत्र (राजूमें)	पटल	विमान संख्या	विमान वर्ण
सौधर्म-ऐशान	2	$1^1/2$	31	60 लाख (32+28)	काला, नीला, लाल, पीला, शुक्ल
सानत्कुमार -माहेन्द्र	2	$1^1/2$	7	20 लाख (12+8)	काले बिना शेष 4
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	1	1/2	4	4 लाख	लाल, पीला शुक्ल
लांतव-कापिष्ठ	1	1/2	2	50000	
शुक्र-महाशुक्र	1	1/2	1	40000	नीला एवं शुक्ल
शतार-सहस्रार	1	1/2	1	6000	
आनत-प्राणत	2	1/2	6	700	शुक्ल
आरण-अच्युत	2	1/2			
कल्पोपपन्न संबंधी जोड़	**12**	**6**	**52**	**84,96,700**	
कल्पातीत **9 ग्रैवेयक (3 अधो + 3 मध्य + 3 ऊर्ध्व ग्रैवेयक)**	-	1	9	309 (111+ 107+91)	शुक्ल
9 अनुदिश	-		1	9	शुक्ल
5 अनुत्तर	-		1	5	शुक्ल
कुल (कल्पोपपन्न + कल्पातीत)		**7**	**63**	**84,97,023**	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देव

स्वर्ग	विमान आधार	अवधिज्ञान क्षेत्र	गमन क्षेत्र: स्व से	गमन क्षेत्र: ऊपर के देव की सहायता से	भाव लेश्या
1-2	जल	कुछ अधिक $1\frac{1}{2}$ राजू (नीचे-1 नरक)	$3\frac{1}{2}$ राजू ($1\frac{1}{2}$+2)	8 राजू (ऊपर-16 स्वर्ग तक, नीचे-3 नरक तक)	मध्यम पीत
3-4	वायु	4 राजू (3+1) (नीचे-2 नरक)	5 राजू		उत्कृष्ट पीत जघन्य पद्म
5-6	ज	$5\frac{1}{2}$ राजू ($3\frac{1}{2}$+2) (नीचे-3 नरक)	$5\frac{1}{2}$ राजू		मध्यम पद्म
7-8	ल एवं	6 राजू (4+2)	6 राजू		मध्यम पद्म
9-10	वा	$7\frac{1}{2}$ राजू ($4\frac{1}{2}$+3) (नीचे-4 नरक)	$6\frac{1}{2}$ राजू		उत्कृष्ट पद्म, जघन्य शुक्ल
11-12	यु	8 राजू (5+3)	7 राजू		उत्कृष्ट पद्म, जघन्य शुक्ल
13-14	आ	$9\frac{1}{2}$ राजू ($5\frac{1}{2}$+4) (नीचे-5 नरक)	$5\frac{1}{2}$ राजू	स्व व पर मिलाकर 6 राजू	मध्यम शुक्ल
15-16	का	10 राजू (6+4)	6 राजू		मध्यम शुक्ल
कल्पातीत 9 ग्रैवेयक		कुछ अधिक 11 राजू (6+5) (नीचे-6 नरक)	अपने विमानों को छोड़कर अन्यत्र गमन का अभाव है।		मध्यम शुक्ल
9 अनुदिश	श	कुछ अधिक 13 राजू			परम शुक्ल
5 अनुत्तर		कुछ कम 14 राजू			परम शुक्ल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देव

स्वर्ग	शरीर की ऊँचाई (उत्कृष्ट) हाथ में	इन्द्र की देवांगनाएँ		
		पट्ट देवांगना	प्रत्येक पट्ट देवांगना की विक्रिया	परिवार देवांगना
सौधर्म-ऐशान	7	8-8	16,000	1,28,000
सानत्कुमार-माहेन्द्र	6	8-8	32,000	64,000
ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर	5	8-8	64,000	32,000
लांतव-कापिष्ठ	5	8-8	1,28,000	16,000
शुक्र-महाशुक्र	4	8-8	2,56,000	8,000
शतार-सहस्रार	4	8-8	5,12,000	4,000
आनत-प्राणत	3.5	8-8	10,24,000	2,000
आरण-अच्युत	3	8-8	10,24,000	2,000
कल्पातीत				
9 ग्रैवेयक (3 अधो 3 मध्य 3 ऊर्ध्व)	$2^1/2$ 2 $1^1/2$		देवांगनाएँ	
9 अनुदिश	1		नहीं होती	
5 अनुत्तर	1		हैं	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वैमानिक देव

स्वर्ग	आयु		देवांगना उत्कृष्ट आयु (पल्य में)	आहारेच्छा अंतराल (उत्कृष्ट) (वर्ष में)	श्वासोच्छ्वास अंतराल (उत्कृष्ट) (पक्ष में)
	जघन्य	उत्कृष्ट (सागर में)			
1-2	कुछ अधिक पल्य	2	5 व 7	2,000	2
3-4	पीछे-पीछे स्वर्ग की उत्कृष्ट आयु में एक समय अधिक करने पर आगे-आगे के स्वर्ग की जघन्य आयु होती है	7	9 व 11	7,000	7
5-6 $		10	13 व 15	10,000	10
7-8		14	17 व 19	14,000	14
9-10		16	21 व 23	16,000	16
11-12		18	25 व 27	18,000	18
13-14		20	34 व 41	20,000	20
15-16		22	48 व 55	22,000	22
कल्पातीत नव ग्रैवेयक		23-31		23,000-31,000	23-31
नव अनुदिश		32		32,000	32
# पंच अनुत्तर		33		33,000	33

$ सभी लौकान्तिक देवों की आयु आठ सागर की होती है।

सर्वार्थसिद्धि के देवों की जघन्य व उत्कृष्ट आयु तैतीस सागर की ही होती है।

1. घातायुष्क सम्यग्दृष्टि देवों की अपेक्षा पहले से बारहवें स्वर्ग में उत्कृष्ट आयु अपनी-अपनी उपर्युक्त वर्णित उत्कृष्ट आयु से अंतर्मुहूर्त कम आधा सागर अधिक होती है।

2. घातायुष्क मिथ्यादृष्टि देवों की अपेक्षा पल्य के असंख्यातवें भाग से अधिक होती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्थितिप्रभावसुखद्युतिलेश्याविशुद्धीन्द्रियावधिविषयतोऽधिका:।।20।।

सूत्रार्थ - स्थिति, प्रभाव, सुख, द्युति, लेश्याविशुद्धि, इन्द्रियविषय और अवधि विषय की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देव अधिक हैं।।20।।

वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर अधिकता

स्थिति	प्रभाव	सुख	द्युति	लेश्या	इन्द्रिय	अवधि
(आयु)	(पर का भला -बुरा करने की शक्ति)	(इन्द्रिय विषयों की सामग्री)	(शरीर, वस्त्र आभूषण की चमक)	(भाव)	ज्ञान	ज्ञान

गतिशरीरपरिग्रहाभिमानतो हीना:।।21।।

सूत्रार्थ - गति, शरीर, परिग्रह और अभिमान की अपेक्षा ऊपर-ऊपर के देव हीन हैं।।21।।

वैमानिक देवों में उत्तरोत्तर हीनता

गति	शरीर	परिग्रह	अभिमान
(गमन की इच्छा)	(ऊँचाई)	(ममता का परिणाम)	(अहंकार)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ब्रह्मलोकालया लौकान्तिकाः ||24||

सूत्रार्थ - लौकान्तिक देवों का ब्रह्मलोक निवासस्थान है||24||

सारस्वतादित्यवह्न्यरुणगर्दतोयतुषिताव्याबाधारिष्टाश्च||25||

सूत्रार्थ - सारस्वत, आदित्य, वह्नि, अरुण, गर्दतोय, तुषित, अव्याबाध और अरिष्ट - ये लौकान्तिक देव हैं||25||

लौकान्तिक देव

निवास	पाँचवें ब्रह्म स्वर्ग के अंत में, 8 दिशाओं में
नाम की सार्थकता	लोक + अंत = ब्रह्म स्वर्ग + अंत (में निवास जिनका) लोक (संसार) + अंत = संसार का अंत निकट जिनका
भेद	1.सारस्वत 2.आदित्य 3.वह्नि 4.अरुण 5. गर्दतोय 6. तुषित 7. अव्याबाध 8.अरिष्ट 8+(16 अन्य) =24 भेद
कुल संख्या	4,07,820
विशेषता	1. स्वतन्त्र 2. परस्पर हीनाधिकता से रहित 3. ब्रह्मचारी 4.चौदह पूर्व के पाठी 5. सम्यग्दृष्टि 6. संसार से विरक्त 7. देवर्षि 8. तीर्थंकरों के तप कल्याणक में ही आते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विजयादिषु द्विचरमाः।।26।।

सूत्रार्थ - विजयादिक में दो चरमवाले देव होते हैं।।26।।

दो भवावतारी

(विजयादिक से अधिक से अधिक 2 बार मनुष्य होकर जीव मोक्ष जाता है)

- 9 अनुदिश
- 4 अनुत्तर

एक भवावतारी

- सर्वार्थसिद्धि देव
- लौकान्तिक देव
- सर्व दक्षिणेन्द्र
- सौधर्म इन्द्र की शची इन्द्राणी
- सौधर्म इन्द्र के लोकपाल

औपपादिकमनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः।।27।।

सूत्रार्थ - उपपाद जन्मवाले और मनुष्यों के सिवा शेष सब जीव तिर्यंच योनि वाले हैं।।27।।

तिर्यंच कौन है

संसारी जीव

- उपपाद जन्म वाले देव व नारकी

- मनुष्य

= तिर्यंच

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कौन तिर्यंच किस स्वर्ग में उत्पन्न होता है

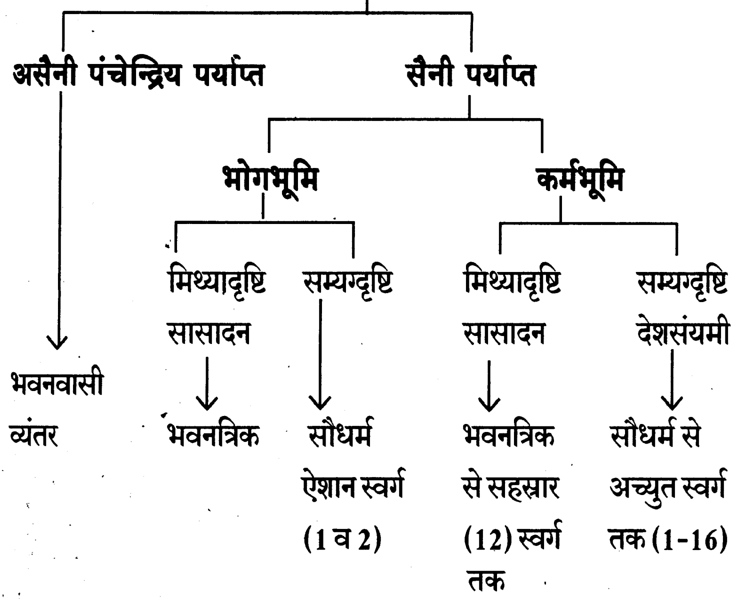

एकेन्द्रिय और विकलेन्द्रिय तिर्यंच देवों में उत्पन्न नहीं होते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कौन मनुष्य किस स्वर्ग में उत्पन्न होता है?

मनुष्य	उत्पत्ति स्वर्ग
1) भोगभूमिया -	
मिथ्यादृष्टि व सासादन गुणस्थानवर्ती	भवनत्रिक
सम्यग्दृष्टि	सौधर्म-ऐशान स्वर्ग (1 व 2)
2) कुभोगभूमिया	
मिथ्यादृष्टि व सासादन गुणस्थानवर्ती	भवनत्रिक
सम्यग्दृष्टि	सौधर्म-ऐशान स्वर्ग (1 व 2)
3) कर्मभूमिया -	
मिथ्यादृष्टि व सासादन गुणस्थानवर्ती	भवनवासी से अच्युत स्वर्ग (16) तक
सम्यग्दृष्टि व देशसंयमी	सौधर्म से अच्युत स्वर्ग (1-16)
द्रव्य जिनलिंगी	ग्रैवेयक तक
सकल संयमी-भावलिंगी मुनि	सौधर्म से सर्वार्थसिद्धि तक
अभव्य जिनलिंगी	ग्रैवेयक तक
परिव्राजक तपस्वी	ब्रह्म स्वर्ग तक (5 तक)
आजीवक, कांजी आहारी, अन्य लिंगी	सहस्रार स्वर्ग तक (12 तक)

देव और नारकी मरकर देवों में उत्पन्न नहीं होते।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कौन देव मरकर कहाँ उत्पन्न होते हैं

सभी देव मरकर देवों में, नरकों में, भोगभूमिया में, विकलत्रय, असैनी पंचेन्द्रिय, सूक्ष्म एकेन्द्रिय, बादर अग्नि व वायु, सभी अपर्याप्तकों में उत्पन्न नहीं होते हैं।	
1) भवनवासी से ऐशान (2) तक	-बादर पर्याप्त एकेन्द्रिय, -पंचेन्द्रिय सैनी तिर्यंच व मनुष्य
2) सानत्कुमार से सहस्रार (3-12) तक	पंचेन्द्रिय सैनी तिर्यंच व मनुष्य (एकेन्द्रिय नहीं होते)
3) आनत (13) स्वर्ग से ऊपर के	मनुष्य ही होते हैं (तिर्यंच नहीं होते)
63 शलाका पुरुषों सम्बन्धी विशेषता	
-भवनत्रिक के देव	63 शलाका पुरुष नहीं होते हैं
-सौधर्म से ग्रैवेयक तक के देव	63 शलाका पुरुषों में उत्पन्न हो सकते हैं
-अनुदिश व अनुत्तर के देव	तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र तो हो सकते हैं। नारायण, प्रतिनारायण नहीं हो सकते हैं।

स्थितिरसुरनागसुपर्णद्वीपशेषाणां सागरोपमत्रिपल्योपमार्द्ध-हीनमिताः।।28।।

सूत्रार्थ - असुरकुमार, नागकुमार, सुपर्णकुमार, द्वीपकुमार और शेष भवनवासियों की उत्कृष्ट स्थिति क्रम से एक सागरोपम, तीन पल्योपम, ढाई पल्योपम, दो पल्योपम और डेढ़ पल्योपम होती है।।28।।

सूत्र क्रमांक 35 और 36 के लिए आगे देखें!

भवनेषु च।।37।।

सूत्रार्थ - भवनवासियों में भी दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है।।37।।

व्यन्तराणाम् च।।38।।

सूत्रार्थ - व्यन्तरों की दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है।।38।।

परा पल्योपममधिकम्।।39।।

सूत्रार्थ - और उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्योपम है।।39।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्योतिष्काणां च।।40।।

सूत्रार्थ - ज्योतिषियों की उत्कृष्ट स्थिति साधिक एक पल्योपम है।।40।।

तदष्टभागोऽपरा।।41।।

सूत्रार्थ - ज्योतिषियों की जघन्य स्थिति उत्कृष्ट स्थिति का आठवाँ भाग है।।41।।

भवनत्रिक-आयु आदि

देवों के नाम	आयु		देवांगना आयु	आहारेच्छा अंतराल
	जघन्य	उत्कृष्ट		
भवनवासी				
असुरकुमार	10 हजार वर्ष	1 सागर	3 पल्य	1000 वर्ष
नागकुमार	10 हजार वर्ष	3 पल्य	पल्य/8	$12\frac{1}{2}$ दिन
सुपर्णकुमार	10 हजार वर्ष	$2\frac{1}{2}$ पल्य	3 पूर्व कोटी	$12\frac{1}{2}$ दिन
द्वीपकुमार	10 हजार वर्ष	2 पल्य	3 करोड़ वर्ष	$12\frac{1}{2}$ दिन
शेष 6 प्रकार	10 हजार वर्ष	$1\frac{1}{2}$ पल्य	3 करोड़ वर्ष	प्रथम 3 प्रकार 12 दिन, शेष 3 प्रकार $7\frac{1}{2}$ दिन
व्यंतर	10 हजार वर्ष	1 पल्य	पल्य/2	कुछ अधिक 5 दिन
ज्योतिषी	पल्य /8	1 पल्य	सभी ज्योतिषी देवांगनाओं की अपने देवों की आयु के आधे प्रमाण	
चन्द्र		पल्य + 1 वर्ष		
सूर्य	पल्य/4	पल्य + 1000 वर्ष		
ग्रह		पल्य + 100 वर्ष		
नक्षत्र	पल्य/8	पल्य/2		
तारे		पल्य/4		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भवनत्रिक-आयु आदि

देवों के नाम	उच्छ्वास अंतराल	शरीर की ऊँचाई	अवधि ज्ञान(क्षेत्र) जघन्य	अवधि ज्ञान(क्षेत्र) उत्कृष्ट	अवधि ज्ञान(काल) जघन्य	अवधि ज्ञान(काल) उत्कृष्ट
भवनवासी **असुरकुमार**	1पक्ष बाद	25 धनुष (37.5 मीटर)		असंख्यात कोटी योजन		असंख्यात वर्ष
नागकुमार **सुपर्णकुमार** **द्वीपकुमार** **शेष 6 प्रकार**	$12^1/_2$ मुर्हूत बाद प्रथम 3 प्रकार 12 मुहूर्त, शेष 3 प्रकार 7 मुहूर्त	10 धनुष (15 मी.)	25 योजन	असंख्यात हजार योजन	कुछ कम 1 दिन	असुर-कुमार का संख्या-तवाँ भाग
व्यंतर	कुछ अधिक 5 मुहूर्त	"	"	"	"	"
ज्योतिषी		7 धनुष (लगभग 10 मीटर)	व्यंतर से संख्यात गुणा	"	व्यंतर से बहुत अधिक	"

जिन व्यंतर देवों की आयु मात्र 10 हजार वर्ष है, उनका आहार दो दिन बाद और श्वासोच्छवास सात प्राणापान बाद होता है।

नारकियों की आयु का वर्णन तीसरे अध्याय से देखें।

नारकाणां च द्वितीयादिषु।।35।।

सूत्रार्थ - दूसरी आदि भूमियों में नारकों की पूर्व-पूर्व की उत्कृष्ट स्थिति ही अनन्तर-अनन्तर की जघन्य स्थिति है।।35।।

दशवर्षसहस्राणि प्रथमायाम्।।36।।

सूत्रार्थ - प्रथम भूमि में दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है।।36।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पञ्चम अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
अजीवास्तिकाय के भेद	1	1	88-89
द्रव्य उनकी विशेषता व स्वरूप	2-7	6	88-90
द्रव्यों की प्रदेश संख्या	8-11	4	91
द्रव्यों के रहने का स्थान (अवगाह क्षेत्र)	12-16	5	92
द्रव्यों का उपकार	17-22	6	93-96
पुद्गल का लक्षण व उसकी पर्यायें	23-24	2	97-99
पुद्गल के भेद व उत्पत्ति के कारण	25-28	4	100-101
द्रव्य, सत् व नित्य का लक्षण	29-31,38	4	102-103,106-108
विरुद्ध धर्मों की एक वस्तु में सिद्धि	32	1	104
पुद्गल के बंध के हेतु व नियम	33-37	5	104-106
काल का वर्णन	39-40	2	109-110
गुण व पर्याय का स्वरूप	41-42	2	111
	कुल	42	

अजीवकाया धर्माधर्माकाशपुद्गलाः ।।1।।

सूत्रार्थ - धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल - ये अजीवकाय हैं।।1।।

द्रव्याणि।।2।।

सूत्रार्थ - ये धर्म, अधर्म, आकाश और पुद्गल द्रव्य हैं।।2।।

जीवाश्च।।3।।

सूत्रार्थ - जीव भी द्रव्य हैं।।3।।

नित्यावस्थितान्यरूपाणि।।4।।

सूत्रार्थ - उक्त द्रव्य नित्य हैं, अवस्थित हैं और अरूपी हैं।।4।।

रूपिणः पुद्गलाः।।5।।

सूत्रार्थ - पुद्गल रूपी हैं।।5।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आ आकाशादेकद्रव्याणि।।6।।

सूत्रार्थ - आकाश तक एक-एक द्रव्य हैं।।6।

निष्क्रियाणि च।।7।।

सूत्रार्थ - तथा निष्क्रिय हैं।।7।।

छह द्रव्य

नाम	जीव	पुद्गल	धर्म	अधर्म	आकाश	काल
स्वरूप	उपयोग	जिसमें स्पर्श, रस, गंध व वर्ण पाए जाएँ	जीव व पुद्गलों को गमन में सहकारी	जीव व पुद्गलों को ठहरने में सहकारी	सभी को अवकाश में सहकारी	सभी को परिणमन में सहकारी
द्रव्य अर्थात् (गुणों का समूह)	✓	✓	✓	✓	✓	✓
अजीव द्रव्य (जिसमें चेतना न हो)		✓	✓	✓	✓	✓
काय (बहु प्रदेशी)	✓	✓	✓	✓	✓	
अजीव काय (दोनों)		✓	✓	✓	✓	
नित्य (कभी नष्ट न हो)	✓	✓	✓	✓	✓	✓
अवस्थित (संख्या कम ज्यादा न हो)	✓	✓	✓	✓	✓	✓

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम	जीव	पुद्गल	धर्म	अधर्म	आकाश	काल
अरूपी (वर्णादि रहित)	✓		✓	✓	✓	✓
रूपी (वर्णादि सहित)		✓				
निष्क्रिय (क्षेत्रान्तर और परिस्पन्दन क्रिया रहित)			✓	✓	✓	✓
द्रव्यों की संख्या	अनंत	अनंत	एक	एक	एक	असंख्यात
एक संख्या			✓	✓	✓	
अनंत संख्या	✓	✓				
असंख्यात संख्या						✓

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्॥8॥

सूत्रार्थ - धर्म, अधर्म और एक जीव के असंख्यात प्रदेश हैं॥8॥

आकाशस्यानन्ताः॥9॥

सूत्रार्थ - आकाश के अनन्त प्रदेश हैं॥9॥

संख्येयाऽसंख्येयाश्च पुद्गलानाम्॥10॥

सूत्रार्थ - पुद्गलों के संख्यात, असंख्यात और अनन्त प्रदेश हैं॥10॥

नाणोः॥11॥

सूत्रार्थ - परमाणु के प्रदेश नहीं होते॥11॥

द्रव्यों के प्रदेश

(उनका नाप)

जीव	पुद्गल	धर्म	अधर्म	आकाश	काल
असंख्यात (एक जीव)	* अणु अवस्थां - एक	असंख्यात	असंख्यात	अनंत	एक
	* स्कंध अवस्था - संख्यात -असंख्यात - अनंत				

प्रदेश = आकाश के जितने हिस्से को एक पुद्गल परमाणु रोके।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लोकाकाशेऽवगाहः।।12।।

सूत्रार्थ - इन धर्मादिक द्रव्यों का अवगाह लोकाकाश में है।।12।।

धर्माधर्मयोः कृत्स्ने।।13।।

सूत्रार्थ - धर्म और अधर्म द्रव्य का अवगाह समग्र लोकाकाश में है।।13।।

एकप्रदेशादिषु भाज्याः पुद्‌गलानाम्।।14।।

सूत्रार्थ - पुद्‌गलों का अवगाह लोकाकाश के एक प्रदेश आदि में विकल्प से होता है।।14।।

असंख्येयभागादिषु जीवानाम्।।15।।

सूत्रार्थ - लोकाकाश के असंख्यातवें भाग आदि में जीवों का अवगाह है।।15।।

लोक में अवगाह

(द्रव्यों के लोक में रहने का तरीका)

	जीव	पुद्‌गल	धर्म	अधर्म	आकाश	काल
एक द्रव्य	* लोक का असंख्यातवाँ भाग * लोक का असंख्यात असंख्यात बहुभाग एवं सर्व लोक(सिर्फ केवली समुद्‌घात में)	* एक प्रदेश (अणु और सूक्ष्म स्कंध) * संख्यात प्रदेश * असंख्यात प्रदेश	समस्त लोक (तिल में तेल जैसे)	समस्त लोक (तिल में तेल जैसे)	-	एक प्रदेश (रत्नों की राशि जैसे)
सर्व द्रव्य	सर्व लोक (लोकाकाश)	सर्व लोक	सर्व लोक	सर्व लोक	-	सर्व लोक

संख्यामान

संख्यात → मति-श्रुत ज्ञानी जिसे जान सकें

असंख्यात → अवधिज्ञानी जिसे जान पाएँ परंतु मति-श्रुत ज्ञानी जिसे न जान सकें

अनंत → मात्र केवलज्ञानी जिसे जान पाएँ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेशसंहारविसर्पाभ्यां प्रदीपवत्।।16।।

सूत्रार्थ - क्योंकि प्रदीप के समान जीव के प्रदेशों का संकोच और विस्तार होने के कारण लोकाकाश के असंख्येय भागादिक में जीवों का अवगाह बन जाता है।।16।।

जीव और पुद्गल के आकाश के अल्प प्रदेशों में रहने का हेतु

जीव	पुद्गल
* प्रदेश संकोच-विस्तार शक्ति (दीपक की तरह)	* सूक्ष्म परिणमन
* शरीर नामकर्म का उदय	* एक-दूसरे को अवगाह देने की शक्ति

गतिस्थित्युपग्रहौ धर्माधर्मयोरुपकारः।।17।।

सूत्रार्थ - गति और स्थिति में निमित्त होना - यह क्रम से धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार है।।17।।

धर्म और अधर्म द्रव्य का उपकार - मुख्य बिन्दु

जीव पुद्गल के गमन व स्थिति में -	
1. उपादान	जीव पुद्गल स्वयं
2. अंतरंग निमित्त	क्रियावती शक्ति
3. बहिरंग निमित्त	1. साधारण कारण (उदासीन-अप्रेरक) धर्म और अधर्म द्रव्य
	2. विशेष कारण - जल, पटरी, छाया आदि
अधर्म द्रव्य -	गतिपूर्वक स्थिति रूप परिणमे द्रव्यों की स्थिति में सहायक, स्थित द्रव्यों को नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आकाशस्यावगाहः ||18||

सूत्रार्थ - अवकाश देना आकाश का उपकार है||18||

आकाश का उपकार - मुख्य बिन्दु

1. समस्त द्रव्यों को अवगाह में आकाश साधारण कारण है।
2. यद्यपि मूर्तिक का मूर्तिक से व्याघात होता है, पर इससे आकाश की अवगाह देने रूप सामर्थ्य नहीं नष्ट होती।
3. अलोकाकाश का भी अवगाह देने का स्वभाव है।

शरीरवाङ्मनः प्राणापानाः पुद्गलानाम्||19||

सूत्रार्थ - शरीर, वचन, मन और प्राणापान - यह पुद्गलों का उपकार है||19||

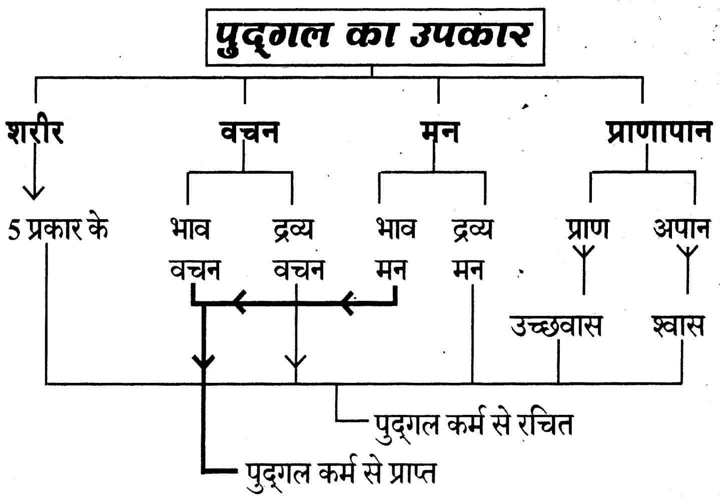

उपर्युक्त सभी पुद्गल का ही जीव पर निमित्तरूप उपकार है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सुखदुःखजीवितमरणोपग्रहाश्च ||20||

सूत्रार्थ - सुख, दुःख, जीवित और मरण - ये भी पुद्गलों के उपकार हैं ||20||

पुद्गल का उपकार

सुख	दुःख	जीवन	मरण
साता वेदनीय का उदय होने पर जीव को प्रसन्नता	असाता वेदनीय का उदय होने पर जीव को अप्रसन्नता	आयु कर्म का बने रहना	आयु कर्म का उच्छेद- समाप्त होना

उपर्युक्त सभी पुद्गल और अन्य जीव का जीव पर निमित्तरूप उपकार है।

परस्परोपग्रहो जीवानाम् ||21||

सूत्रार्थ - परस्पर निमित्त होना - यह जीवों का उपकार है ||21||

जीव का उपकार

उपकार (निमित्त)	योग्यता	कर्ता
↓ जीव जीव को	↓ जीव की स्वयं की	↓ एक जीव दूसरे जीव का कर्ता नहीं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वर्तनापरिणामक्रियाः परत्वापरत्वे च कालस्य।।22।।

सूत्रार्थ - वर्तना, परिणाम, क्रिया, परत्व और अपरत्व - ये काल के उपकार हैं।।22।।

काल का उपकार

वर्तना (परिणमन में निमित्त) → निश्चय काल का उपकार

परिणाम (पर्याय)

क्रिया (हलन - चलन)

परत्व (बहुत समय लगना)

अपरत्व (थोड़ा समय लगना)

(परिणाम, क्रिया, परत्व, अपरत्व) → व्यवहार काल का उपकार

सूत्र क्रमांक 17 से 22 तक का सार -

द्रव्यों का उपकार (निमित्त - सहायक)

	जीव	पुद्गल	धर्म	अधर्म	आकाश	काल
क्या उपकार (कार्य)	परस्पर में एक दूसरे का उपकार	1. शरीर 2. वचन 3. मन 4. श्वासो-च्छवास 5. सुख 6. दुख 7. जीवन 8. मरण	गति	स्थिति	अवगाहन	1. वर्तना 2. परिणाम 3. क्रिया 4. परत्व 5. अपरत्व
किस द्रव्य पर	जीव का जीव पर	जीव पर	जीव और पुद्गल पर	जीव और पुद्गल पर	सभी पर	सभी पर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्पर्शरसगन्धवर्णवन्तः पुद्‌गलाः ||23||

सूत्रार्थ - स्पर्श, रस, गन्ध और वर्णवाले पुद्‌गल होते हैं ||23||

शब्दबन्धसौक्ष्म्यस्थौल्यसंस्थानभेदतमश्छायातपोद्योतवन्तश्च ||24||

सूत्रार्थ - तथा वे शब्द, बन्ध, सूक्ष्मत्व, स्थूलत्व, संस्थान, भेद, अन्धकार, छाया, आतप और उद्योत वाले होते हैं ||24||

पुद्‌गल

स्वरूप और गुण ⟶ जिसमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाए जाएँ।

पर्यायें (1) शब्द (2) बन्ध (3) सूक्ष्म (4) स्थूल (5) संस्थान (6) भेद (7) तम (8) छाया (9) आतप (10) उद्योत

(1) शब्द

(जो कान से सुना जाए)

- **भाषात्मक (सभी प्रायोगिक)** (जो मुख से उत्पन्न हो)
  - **अक्षरात्मक** (मनुष्य व्यवहार में आने वाली अनेक बोलियाँ)
  - **अनक्षरात्मक**
    - * त्रस तिर्यंचों की भाषा
    - * मनुष्य के संकेत वचन
    - * दिव्य ध्वनि
- **अभाषात्मक** (जो दो वस्तुओं के आघात से उत्पन्न हो)
  - **प्रायोगिक** (पुरुष के प्रयत्न से उत्पन्न हो)
    - **तत** (चमड़े के मढ़े) (ढोल, तबला)
    - **वितत** (तार वाली) (वीणा)
    - **घन** (ठोस पदार्थ) (घंटा, घुँघरू)
    - **सुषिर** (फूँक से) (बाँसुरी)
  - **वैस्रसिक** (स्वाभाविक) (बादलों की गर्जन, झरने की आवाज आदि)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(2) बंध

- **प्रायोगिक (प्रयत्नपूर्वक)**
  - अजीव विषयक (मकान कपड़े आदि)
  - जीव-अजीव विषयक (जीव और कर्म-नोकर्म)
- **वैस्रसिक (स्वाभाविक)**
  - आदिमान (बादल, बिजली आदि)
  - अनादिमान (महास्कंध)

(3) सूक्ष्म

- **अन्त्य** (अन्य की विवक्षा रहित) → परमाणु
- **आपेक्षिक** (विवक्षा सहित) → जैसे - बेर आँवले से सूक्ष्म है

(4) स्थूल

- **अन्त्य** → महास्कंध
- **आपेक्षिक** → जैसे - आँवला बेर से स्थूल है

(5) संस्थान (आकार)

- **इत्थं लक्षण** (निश्चित आकार) → (गोल, त्रिकोण आदि)
- **अनित्थं लक्षण** (अनिश्चित आकार) → (बादल, आदि)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

(6) भेद (टुकड़े - भंग होना)

- **उत्कर** (लकड़ी का बुरादा)
- **चूर्ण** (गेहूँ का आटा)
- **खण्ड** (घड़े के टुकड़े)
- **चूर्णिका** (मूँग आदि की दाल)
- **प्रतर** (मेघ के पटल)
- **अनुचटन** (गर्म लोहे की चिनगारी)

(7) तम (अंधकार)

↓

प्रकाश का विरोधी

(8) छाया (प्रकाश को ढकने वाली)

- **तद्वर्ण परिणत** (दर्पण में रूप)
- **प्रतिबिम्ब स्वरूप** (परछाई)

(9) आतप

मूल ठंडा, आभा गर्म

↓

(सूर्य का बिम्ब)

(10) उद्योत

मूल और आभा दोनों शीतल

↓

(चन्द्रमा का बिम्ब, जुगनू आदि)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अणवः स्कन्धाश्च ||25||

सूत्रार्थ - पुद्गल के दो भेद हैं - अणु और स्कन्ध ||25||

पुद्गल के भेद (जाति अपेक्षा)

परमाणु (अणु)
(पुद्गल का सबसे छोटा टुकड़ा)
(आदि, मध्य, अंत से रहित)
(स्वाभाविक दशा)

स्कन्ध
(दो या दो से अधिक परमाणुओं का समूह)

	स्कंध	देश	प्रदेश
	सर्वांश में पूर्ण	स्कंध का आधा	देश का आधा
	लम्बाई, चौड़ाई मोटाई तीनों हो	लम्बाई, चौड़ाई हो	सिर्फ लम्बाई हो
कम से कम -	8 परमाणु	4 परमाणु	2 परमाणु

परमाणु में एक साथ

2 स्पर्श	1 रस	1 गंध	1 वर्ण	कुल=5
* शीत-उष्ण और * स्निग्ध-रूक्ष के युगल में से एक-एक	* 5 में से कोई 1	* 2 में से1	*5 में से 1	

स्कंध में एक साथ रूपादि की 20 पर्यायें हो सकतीं हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल के अन्य प्रकार से भेद

	सूक्ष्म-सूक्ष्म	सूक्ष्म	सूक्ष्म-स्थूल	स्थूल-सूक्ष्म	स्थूल	स्थूल-स्थूल
स्व-रूप	स्कंध अवस्था से रहित	इन्द्रियों से ग्रहण न हो	नेत्र के सिवाय शेष इन्द्रियों से ग्रहण हो	नेत्र से दिखे पर पकड़ में न आए	द्रव पदार्थ	ठोस पदार्थ
दृष्-टांत	परमाणु	कार्मण वर्गणा	वायु, ध्वनि	छाया, प्रकाश	जल, तेल	लकड़ी, पत्थर

भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते।।26।।

सूत्रार्थ-भेद से, संघात से तथा भेद और संघात दोनों से स्कन्ध उत्पन्न होते हैं।।26।।

भेदादणुः।।27।।

सूत्रार्थ - भेद से अणु उत्पन्न होता है।।27।।

भेदसंघाताभ्यां चाक्षुषः।।28।।

सूत्रार्थ - भेद और संघात से चाक्षुष स्कन्ध बनता है।।28।।

स्कन्धादि की उत्पत्ति के कारण

स्कन्ध ↓
1. भेद (अलग होना)
2. संघात (मिलना)
3. भेद-संघात (दोनों एक साथ)

परमाणु ↓
भेद से ही

चाक्षुष स्कन्ध (वह स्कंध जो चक्षु से दिखे) ↓
भेद-संघात से ही

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सद् द्रव्यलक्षणम्।।29।।

सूत्रार्थ - द्रव्य का लक्षण सत् है।।29।।

उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्।।30।।

सूत्रार्थ - जो उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य - इन तीनों से युक्त अर्थात् इन तीनों रूप है, वह सत् है।।30।।

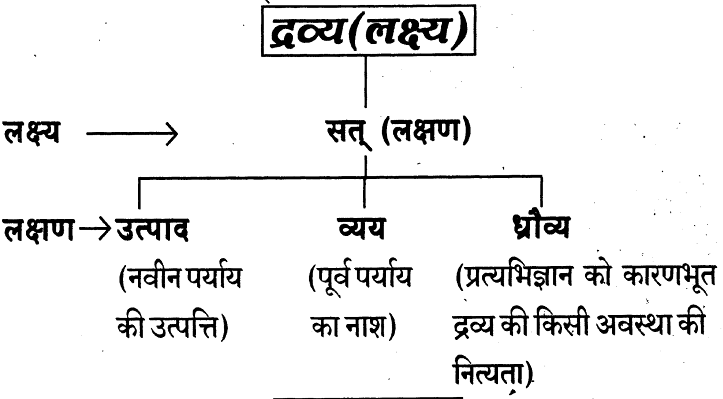

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्य

तीन रूप (भेद से)

उत्पाद **व्यय** **ध्रौव्य**

* लक्ष्य और लक्षण का भेद है
* नाम, संख्या, स्वरूप, प्रयोजन से भेद

एक रूप (अभेद से)

↓

सत् रूप

* उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य पृथक् नहीं हो सकते, इसलिए एक हैं।
* उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य प्रदेशों से एक हैं।

सत्ता

महासत्ता
(सादृश्य अस्तित्व)
(जो भी है, वह सब सत् रूप है)

अवान्तर सत्ता
(स्वरूप अस्तित्व)
(जो भी है, वह अपने-अपने भिन्न-भिन्न स्वरूप से है)

तद्भावाव्ययं नित्यम्।।31।।

सूत्रार्थ - उसके भाव से (अपनी जाति से) च्युत न होना नित्य है।।31।।

नित्य

↓

तद्भाव	**का**	**अव्यय**
↓		↓
जिस वस्तु का जो भाव है	उससे	च्युत न होना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अर्पितानर्पितसिद्धेः||32||

सूत्रार्थ - मुख्यता और गौणता की अपेक्षा एक वस्तु में विरोधी मालूम पड़ने वाले दो धर्मों की सिद्धि होती है||32||

स्याद्वाद शैली

(जैनधर्म का आधार स्तम्भ सूत्र)

अर्पित (मुख्य) — **अनर्पित** (गौण)

वस्तु अनेकान्तात्मक अर्थात् अनेक धर्मों वाली है। जैसे - वस्तु नित्यानित्यात्मक है। चूँकि वक्ता अनेक धर्मों को एक साथ कह नहीं सकता है। वह एक समय में एक ही धर्म को कह सकता है। अतः वह एक धर्म को अर्पित (मुख्य) एवं अन्य धर्मों को अनर्पित (गौण) करके कथन करता है।

स्निग्धरूक्षत्वाद् बन्धः||33||

सूत्रार्थ - स्निग्धत्व और रूक्षत्व से बन्ध होता है||33||

बंध

(अनेक पदार्थों में एकपने का ज्ञान कराने वाला संबंध विशेष)

- **पुद्गल का पुद्गल से** → स्पर्श गुण के कारण संयोग संबंध (यहाँ ये बन्ध विवक्षित है।)
- **जीव का रागादि विकारी भावों से** → संयोग संबंध
- **जीव का पुद्गल (कर्म-नोकर्म) से** → एक क्षेत्र अवगाह संबंध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

न जघन्यगुणानाम्।।34।।

सूत्रार्थ - जघन्य गुणवाले पुद्गलों का बन्ध नहीं होता।।34।।

गुणसाम्ये सदृशानाम्।।35।।

सूत्रार्थ - गुणों की समानता होने पर तुल्य जाति वालों का बन्ध नहीं होता।।35।।

द्व्यधिकादिगुणानां तु।।36।।

सूत्रार्थ - दो अधिक आदि शक्त्यंश वालों का तो बन्ध होता है।।36।।

परमाणुओं का बंध

किनका नहीं होता है?
↓
* जघन्य गुण (अविभाग प्रतिच्छेद) वाले पुद्गलों का
* साम्य (समान) गुणवालों का

कब होता है?
↓
* स्निग्धता व रूक्षता के कारण
* दो अधिक गुण होने पर ही

किनका होता है?
↓
* 1. स्निग्ध का स्निग्ध से
  2. रूक्ष का रूक्ष से
  3. स्निग्ध का रूक्ष से

बन्धेऽधिकौ पारिणामिकौ च।।37।।

सूत्रार्थ - बन्ध होते समय दो अधिक गुणवाला परिणमन कराने वाला होता है।।37।।

बंध होने पर

कम गुण वाले परमाणु ⟶ अधिक गुण रूप परिणत हो जाते हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गल बंध से जीव बंध की तुलना

पुद्गल	जीव
स्निग्धता और रूक्षता के कारण	*राग(स्निग्ध) और द्वेष(रूक्ष) के कारण
जघन्य गुण रूप परमाणु का बंध नहीं होता	*जघन्य (एक) गुण - आत्मा का एकत्व होने पर बंध नहीं *सूक्ष्म लोभ (जघन्य राग) से मोहनीय का बंध नहीं
बंध होने पर अधिक गुण (शक्ति) रूप परिणमन	*लोक में भी अधिक गुणों वाले व्यक्ति के संयोग से ऊँचे (गुण) रूप परिणमन होता है और हीन गुण वाले व्यक्ति के संयोग से हीन परिणमन होता है।

गुणपर्ययवद्द्रव्यम्।।38।।

सूत्रार्थ - गुण और पर्याय वाला द्रव्य है।।38।।

द्रव्य का अन्य प्रकार से लक्षण

गुण-पर्यायवान

गुण	पर्याय
* जो द्रव्य के सभी हिस्सों और सभी हालतों में पाया जाए	* जो उत्पन्न और नष्ट हो अथवा गुणों के विकार (विशेष कार्य)
* ध्रौव्य रूप	* उत्पाद-व्यय रूप
* अन्वयी- बने रहना (वही का वही)	* व्यतिरेकी - बदलना (भिन्न-भिन्न)
* सहभावी पर्याय	* क्रमवर्ती पर्याय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुण

सामान्य गुण	विशेष गुण
(जो सभी द्रव्यों में पाए जाएँ)	(जो सभी द्रव्यों में न पाए जाएँ)
जैसे - अस्तित्व	जैसे- जीव का ज्ञान
वस्तुत्व	पुद्गल का रूपीपना
द्रव्यत्व	धर्म का गतिहेतुत्व
प्रमेयत्व	अधर्म का स्थितिहेतुत्व
अगुरुलघुत्व	आकाश का अवगाहनहेतुत्व
प्रदेशत्व	काल का परिणमनहेतुत्व

अन्य प्रकार से गुण

	साधारण	साधारण-असाधारण	असाधारण
परिभाषा	जो सभी द्रव्यों में पाए जाएँ	जो सभी में नहीं, पर एक से अधिक द्रव्यों में पाए जाएँ	जो अपने-अपने द्रव्य में ही पाए जाएँ
जैसे -	अस्तित्व वस्तुत्व	अमूर्तत्व अचेतनत्व	ज्ञान, दर्शन रस, गंध

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सामान्य गुणों का स्वरूप

गुण का नाम		स्वरूप
1. अस्तित्व गुण	जिस शक्ति के कारण	द्रव्य का कभी नाश न हो।
2. वस्तुत्व गुण		द्रव्य में अर्थ क्रिया हो।
3. द्रव्यत्व गुण		द्रव्य सर्वदा एक-सा न रहे और जिसकी पर्यायें हमेशा बदलती रहें।
4. प्रमेयत्व गुण		द्रव्य किसी न किसी के ज्ञान का विषय हो।
5. अगुरुलघुत्व गुण		द्रव्य की द्रव्यता कायम रहे, एक द्रव्य दूसरे द्रव्य रूप न परिणमे, एक गुण दूसरे गुण रूप न परिणमे, एक द्रव्य के अनेक गुण बिखरकर जुदे-जुदे न हो जावें।
6. प्रदेशत्व गुण		द्रव्य का कुछ न कुछ आकार अवश्य हो।

पर्याय

- **व्यंजन पर्याय** (प्रदेशत्व गुण का विकार)
  - स्वभाव व्यंजन पर्याय (बिना किसी निमित्त के)
    - * सिद्ध पर्याय
    - * अणु
  - विभाव व्यंजन पर्याय (अन्य के निमित्त से)
    - * नर, नारकी पर्याय,
    - * स्कंध
- **अर्थ पर्याय** (प्रदेशत्व के सिवाय शेष गुणों का विकार)
  - स्वभाव अर्थ पर्याय (बिना किसी निमित्त के)
    - * केवलज्ञान
  - विभाव अर्थ पर्याय (अन्य के निमित्त से)
    - * मति-श्रुत ज्ञान

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कालश्च।।39।।

सूत्रार्थ - काल भी द्रव्य है।।39।।

सोऽनन्तसमयः।।40।।

सूत्रार्थ - वह अनन्त समय वाला है।।40।।

काल भी द्रव्य है

↓

इसलिए

↓

सत् स्वरूप — उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य सहित — गुण-पर्याय वाला

↓

और

↓

अचेतन — नित्य — अवस्थित — अमूर्तिक — निष्क्रिय — 1 प्रदेशी (अकायवान मुख्य-गौण दोनों प्रकार से)

काल

निश्चय काल	व्यवहार काल
* द्रव्य	* निश्चय काल द्रव्य की पर्याय
* कालाणु	* समय, घंटा, दिन आदि
* लोक प्रमाण असंख्यात कालाणु	* अनंत पर्यायें (भूत, वर्तमान, भविष्य मिलाकर)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

काल की सिद्धि

1. काल है ?	1. क्योंकि सभी द्रव्यों के परिणमन में साधारण कारण की आवश्यकता अनिवार्य है।
2. कालाणु एक प्रदेशी ही क्यों ?	2. * जितनी बड़ी पर्याय होती है, उतना द्रव्य इसलिए काल की समय पर्याय जितना 1 प्रदेशी कालाणु है। * मंदगति से गमन करते पुद्गल परमाणु को एक आकाश प्रदेश ही सहायक होता है
3. हर प्रदेश पर एक ही क्यों ?	3. वर्ना उस प्रदेश के द्रव्यों (विशेष रूप से 1 परमाणु) का परिणमन कैसे हो !

प्रचय के भेद

तिर्यक् प्रचय
(प्रदेशों का समूह)

ऊर्ध्व प्रचय
(पर्यायों का समूह)

काल द्रव्य

तिर्यक् प्रचय नहीं होता है

ऊर्ध्व प्रचय होता है
(समय रूप पर्याय का)

शेष द्रव्य

दोनों प्रकार के प्रचय होते हैं।

परमाणु के तिर्यक् प्रचय नहीं होता।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः ।।41।।

सूत्रार्थ - जो निरन्तर द्रव्य में रहत हैं और (अन्य) गुणरहित हैं, वे गुण हैं।।41।।

गुण का लक्षण

- सदा द्रव्य के आश्रय से रहे
- अन्य गुणों से रहित हो

तद्भावः परिणामः ।।42।।

सूत्रार्थ - उसका होना अर्थात् प्रति समय बदलते रहना परिणाम है।।42।।

परिणाम (भाव)

- **अनादि** (प्रवाह अपेक्षा)
- **सादि** (प्रति समय नया-नया)
  - धर्मादि 4 द्रव्य - दोनों परिणाम आगम से जाने जाते हैं।
  - जीव और पुद्गल - दोनों परिणाम कथंचित् प्रत्यक्षगम्य हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

षष्ठ अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
आस्रव योग आस्रव है	1-2	2	113-114
आस्रव के भेद - योग अपेक्षा	3	1	114
- स्वामी अपेक्षा	4	1	115
- साम्परायिक आस्रव के 39 भेद	5	1	116-118
आस्रव में हीन-अधिकता के कारण	6	1	118
अधिकरण और उसके भेद	7-9	3	119-120
8 कर्मों में प्रत्येक के आस्रव के कारण - ज्ञानावरण और दर्शनावरण	10	1	121
- वेदनीय	11-12	2	121-122
- मोहनीय	13-14	2	123
- आयु	15-21	7	124-125
- नाम	22-24	3	126-127
- गोत्र	25-26	2	128
- अंतराय	27	1	129
	कुल	27	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आस्रव

- **द्रव्य आस्रव** (पौद्गलिक कर्मों का आना)
- **भाव आस्रव** (आत्मा के मोह, राग, द्वेषरूप विकारी भाव)

कायवाङ्मनः कर्मयोगः ||1||

सूत्रार्थ - काय, वचन और मन की क्रिया योग है||1||

योग

- **भाव योग** (कर्म-नोकर्म को ग्रहण करने की जीव की शक्ति विशेष)
- **द्रव्य योग** (आत्मप्रदेशों में परिस्पन्दन (कम्पन))
  - ↓ इसमें निमित्त
  - मन, वचन, काय की क्रिया (चेष्टा)

निमित्त अपेक्षा योग के भेद

4 मनोयोग 4 वचन योग 7 काययोग = **कुल 15**

योग गुण

- **स्वभाव पर्याय**
  - ↓ निष्कम्प अवस्था (सिद्धों और 14वें गुणस्थान में)
- **विकारी पर्याय**
  - ↓ सकम्प अवस्था (पहले से तेरहवें गुणस्थान तक)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स आस्रवः।।2।।

सूत्रार्थ - वही आस्रव है।।2।।

आस्रव का स्वरूप

(कर्मों का आना)

- **उपादान** → भाव योग
- **कार्य** → द्रव्य योग
- **निमित्त** → मन, वचन, काय की चेष्टा
- **फल** → द्रव्यास्रव- कर्मों का आना

अथवा

- **कारण (निमित्त)** → द्रव्य योग
  जैसे - नाव में जल आने का छिद्र
- **कार्य** → कर्मों का आना
  जैसे - जल का आना

शुभः पुण्यस्याशुभः पापस्य।।3।।

सूत्रार्थ - शुभयोग पुण्य का और अशुभयोग पाप का आस्रव है।।3।।

योग के निमित्त से आस्रव में भेद

- **पुण्यास्रव**
  कारण → शुभ योग (शुभ परिणामों के निमित्त से)
  - **काय** - जैसे - -प्राणीरक्षा -पूजा -स्वाध्याय
  - **वचन** - -सत्यकथन -उपदेश -स्तुति
  - **मन** - -दूसरे का भला सोचना -पंच परमेष्ठी का चिंतन
- **पापास्रव**
  → अशुभ योग (अशुभ परिणामों के निमित्त से)
  - **काय** - -प्राणीहिंसा -चोरी -मैथुन
  - **वचन** - -असत्य -कटुवचन -असभ्यवचन
  - **मन** - -मारने का विचार -ईर्ष्या

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

** पुण्यास्रव एवं पापास्रव भेद अघातिया कर्मों की अपेक्षा है।*
** घातिया कर्म तो पापरूप ही हैं।*

सकषायाकषाययोः साम्परायिकेर्यापथयोः।।4।।

सूत्रार्थ - कषायसहित और कषायरहित आत्मा का योग क्रम से साम्परायिक और ईर्यापथ कर्म के आस्रव रूप है।।4।।

स्वामी अपेक्षा आस्रव के भेद

साम्परायिक आस्रव — **ईर्यापथ आस्रव**

	साम्परायिक आस्रव	ईर्यापथ आस्रव
स्वामी	सकषायी (कषाय सहित)	अकषायी (कषाय रहित)
हेतु	मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद कषाय के साथ योग	सिर्फ योग
किसका कारण	संसार का कारण	स्थिति रहित आस्रव का कारण
कितने प्रकार का बंध	प्रकृति, प्रदेश, स्थिति और अनुभाग बंध होता है	प्रकृति और प्रदेश बंध ही होता है
गुणस्थान	पहले से 10वें गुणस्थान तक	11वें, 12 वें, 13वें गुणस्थान में
जैसे	(कषाय रूपी) तेल युक्त दीवार पर (कर्मरूपी) रज चिपक जाती है।	कोरी दीवार पर रज आकर चली जाती है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

इन्द्रियकषायाव्रतक्रियाः पञ्चचतुःपञ्चपञ्चविंशतिसंख्याः पूर्वस्य भेदाः ।।5।।

सूत्रार्थ - पूर्व के अर्थात् साम्परायिक कर्मास्रव के इन्द्रिय, कषाय, अव्रत और क्रिया रूप भेद हैं, जो क्रम से पाँच, चार, पाँच और पच्चीस हैं।।5।।

साम्परायिक आस्रव - 39 भेद

- **इन्द्रिय** 5 (पाँच इन्द्रियों के विषय में प्रवृत्ति का भाव)
  - स्पर्शन
  - रसना
  - घ्राण
  - चक्षु
  - श्रोत्र
- **कषाय** 4 (जो आत्मा को कसे अर्थात् दुःख दे)
  - क्रोध
  - मान
  - माया
  - लोभ
- **अव्रत** 5 (दुःख का कारण बुरा कार्य)
  - हिंसा
  - झूठ
  - चोरी
  - कुशील
  - परिग्रह
- **क्रिया** 25 (भिन्न-भिन्न भावों सहित प्रवृत्ति)
  - 5 विभिन्न क्रिया
  - 5 हिंसा भाव की मुख्यतारूप
  - 5 इन्द्रियों के भोग बढ़ाने सम्बन्धी
  - 5 धर्माचरण में दोष कारक
  - 5 धर्म धारण से विमुख करनेवाली

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

25 क्रियाएँ

5 विभिन्न क्रियाएँ

- **सम्यक्त्व** (सम्यक्त्व बढ़ाने वाली)
- **मिथ्यात्व** (मिथ्यात्व पुष्ट करने वाली)
- **प्रयोग** (शरीरादि द्वारा गमनादि प्रवृत्ति)
- **समादान** (संयमी का असंयम के सन्मुख होना)
- **ईर्यापथ** (संयम बढ़ाने वाली)

5 हिंसा भाव की मुख्यतारूप क्रियाएँ

- **प्रादोषिकी** (क्रोध के आवेश में द्वेषबुद्धि करना)
- **कायिकी** (क्रोध के आवेश में काय चेष्टा करना)
- **अधिकरणिकी** (हिंसा के साधन ग्रहण करना)
- **परितापकी** (दूसरों को दुख उत्पत्ति के कारणरूप क्रिया)
- **प्राणातिपातिकी** (दूसरे के 10 प्राणों का वियोग करना)

5 इन्द्रियों के भोग बढ़ाने सम्बन्धी क्रियाएँ

- **दर्शन** (सुन्दर रूप देखने का अभिप्राय)
- **स्पर्शन** (स्पर्श करने का भाव)
- **प्रात्ययिकी** (भोगों की नई-नई सामग्री जुटाना)
- **समन्तानुपात** (जीवों के रहने के स्थान पर मल-मूत्र त्यागना)
- **अनाभोग** (बिना देखे स्थान पर उठना, बैठना आदि)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

5 धर्माचरण में दोष कारक क्रियाएँ

स्वहस्त	निसर्ग	विदारण	आज्ञाव्यापादिकी	अनाकांक्षा
(हीन पुरुषों योग्य कार्य स्वयं करना)	(पाप साधनों के लेन-देन में सम्मति देना)	(दूसरे के दोष प्रकट करना)	(शास्त्र की आज्ञा को न पाल उनके विपरीत अर्थ करना)	(शास्त्र उपदेशित विधि का अनादर)

5 धर्म-धारण से विमुख करने वाली क्रियाएँ

आरम्भ	परिग्रहिकी	माया	मिथ्यादर्शन	अप्रत्याख्यान
(छेदन, भेदन आदि में स्वयं रत व हर्षित होना)	(परिग्रह की रक्षा के उपाय में लगे रहना)	(ज्ञान-दर्शन आदि के विषय में छल करना)	(मिथ्यादृष्टि की क्रियाओं की प्रशंसा करना)	(त्याग परिणाम नहीं होना)

तीव्रमन्दज्ञाताज्ञातभावाधिकरणवीर्यविशेषेभ्यस्तद्विशेषः।।6।।

सूत्रार्थ - तीव्रभाव, मन्दभाव, ज्ञातभाव, अज्ञातभाव, अधिकरण और वीर्यविशेष के भेद से उसकी (आस्रव की) विशेषता होती है।।6।।

आस्रव में हीनता-अधिकता के कारण

तीव्रभाव	मंदभाव	ज्ञातभाव	अज्ञातभाव	अधिकरण	वीर्य
(तीव्र कषाय रूप भाव)	(मंद कषाय रूप भाव)	(बुद्धिपूर्वक जानकर)	(प्रमाद अज्ञान सहित)	(आधार)	(स्व बल)

कारण के भेद से कार्य - आस्रव में भेद होता ही है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अधिकरणं जीवाजीवाः ||7||

सूत्रार्थ - अधिकरण जीव और अजीव रूप हैं||7||

अधिकरण (आधार)

जीव अधिकरण	अजीव अधिकरण
(जीव की पर्यायें)	(अजीव की पर्यायें)

आद्यं संरम्भसमारम्भारम्भयोगकृतकारितानुमतकषायविशेषै-स्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः ||8||

सूत्रार्थ - पहला जीवाधिकरण संरम्भ, समारम्भ और आरम्भ के भेद से तीन प्रकार का, योगों के भेद से तीन प्रकार का, कृत, कारित और अनुमत के भेद से तीन प्रकार का तथा कषायों के भेद से चार प्रकार का होता हुआ परस्पर मिलाने से एक सौ आठ प्रकार का है||8||

जीव अधिकरण

* संरम्भ (विचार-संकल्प)	*मनयोग	* कृत (करना)	* क्रोध	
* समारम्भ (साधन-सामग्री जुटाना)	* वचनयोग	* कारित (कराना)	* मान	
* आरम्भ (कार्य शुरू करना)	* काय योग	* अनुमत (दूसरे के कार्य में सम्मति देना)	* माया	
			* लोभ	
कुल = 3 x	3 x	3 x	4	= 108

जीव अधिकरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्वर्तनानिक्षेपसंयोगनिसर्गा द्विचतुर्द्वित्रिभेदाः परम्।।9।।

सूत्रार्थ - पर अर्थात् अजीवाधिकरण क्रम से दो, चार, दो और तीन भेद वाले निर्वर्तना, निक्षेप, संयोग और निसर्ग रूप है।।9।।

अजीव अधिकरण

- **निर्वर्तना** (रचना करना) 2
  - **मूल गुण** (अंतरंग साधन)
    - शरीर
    - वचन
    - मन
    - प्राण
    - अपान
  - **उत्तर गुण** (बहिरंग साधन)
    - काष्ठ कर्म
    - चित्रकर्म
    - पुस्तक कर्म आदि
- **निक्षेप** (रखना) 4
  - **अप्रत्यवेक्षित** (बिना देखे)
  - **दुःप्रमृष्ट** (बिना प्रमार्जित)
  - **सहसा** (भय, शीघ्रता के कारण)
  - **अनाभोग** (उपयोग रहित कहीं भी)
- **संयोग** (मिलाना) 2
  - **भक्तपान** (विरुद्ध अन्न, जल आदि)
  - **उपकरण** (शीत का उष्ण, शुद्ध का अंशुद्ध से स्पर्श करना)
- **निसर्ग** (प्रवर्तना) 3
  - **काय** (शरीर से कुचेष्टा आदि)
  - **वचन** (दुष्ट शब्दों का उच्चारण)
  - **मन** (मन में दुष्ट विचार आदि)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8 कर्मों में प्रत्येक के आस्रव के कारण

(वे कारण जिनसे उस उस कर्म का अनुभाग अधिक बँधता है)

तत्प्रदोषनिह्नवमात्सर्यान्तरायासादनोपघाता ज्ञानदर्शनावरणयोः ||10||

सूत्रार्थ - ज्ञान और दर्शन के विषय में प्रदोष, निह्नव, मात्सर्य, अन्तराय, आसादन और उपघात - ये ज्ञानावरण और दर्शनावरण के आस्रव हैं||10||

ज्ञानावरण - दर्शनावरण

प्रदोष	निह्नव	मात्सर्य	अंतराय	आसादन	उपघात
(तत्त्व की बात के प्रति मन में ईर्ष्या -नहीं सुहाना)	(जानते हुए भी छुपाना)	(दूसरे आगे नहीं बढ़ जाएँ, इसलिए नहीं बताना)	(ज्ञान और ज्ञान के साधनों की प्राप्ति में बाधा डालना)	(पर के द्वारा प्रकाशित होने वाले ज्ञान को रोकना)	(ज्ञान को अज्ञान कह नष्ट करना)

दुःखशोकतापाक्रन्दनवधपरिदेवनान्यात्मपरोभयस्थानान्य-सद्वेद्यस्य||11||

सूत्रार्थ -अपने में, दूसरे में या दोनों में विद्यमान दुःख, शोक, ताप, आक्रन्दन, वध और परिदेवन - ये असाता वेदनीय कर्म के आस्रव हैं||11||

असाता वेदनीय

दुःख	शोक	ताप	आक्रन्दन	वध	परिदेवन
(पीड़ा रूप आत्म-परिणाम)	(इष्ट के वियोग में व्याकुलता)	(संसार में निन्दा होने पर पश्चात्ताप)	(संक्लेशता के कारण रोना-चिल्लाना)	(10 प्राणों का वियोग करना)	(ऐसा रोना कि सुनने वाले को दया पैदा हो)

ये दुःखादि सभी - 1.आप स्वयं करें, 2. दूसरे को करावें, 3. आप व पर दोनों को करें - ये तीनों ही आस्रव के कारण हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

भूतव्रत्यनुकम्पादानसरागसंयमादियोगः क्षान्तिः शौचमिति सद्वेद्यस्य।।12।।

सूत्रार्थ - भूत-अनुकम्पा, व्रती-अनुकम्पा, दान और सरागसंयम आदि का योग तथा क्षान्ति और शौच - ये सातावेदनीय कर्म के आस्रव हैं।।12।।

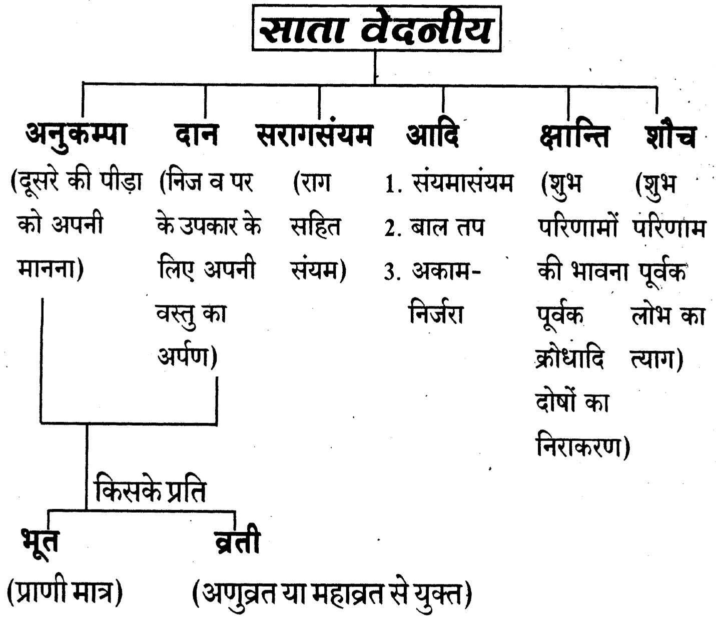

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

केवलिश्रुतसंघधर्मदेवावर्णवादो दर्शनमोहस्य।।13।।

सूत्रार्थ - केवली, श्रुत, संघ, धर्म और देव - इनका अवर्णवाद दर्शनमोहनीय कर्म का आस्रव है।।13।।

कषायोदयात्तीव्रपरिणामश्चारित्रमोहस्य।।14।।

सूत्रार्थ - कषाय के उदय से होने वाला तीव्र आत्मपरिणाम चारित्र मोहनीय का आस्रव है।।14।।

मोहनीय

दर्शन मोहनीय
↓
इनका अवर्णवाद करना
(निर्दोष में दोष लगाना)

- **केवली** (अरिहंत सर्वज्ञ)
- **श्रुत** (केवली का कहा हुआ और गणधर द्वारा रचा हुआ)
- **संघ** (निर्ग्रन्थ वीतरागी मुनियों का समूह)
- **धर्म** (जो उत्तम स्थान में रखे)
- **देव** (देवगति के देव)

चारित्र मोहनीय
↓
कषाय के उदय से तीव्र कलुष परिणाम
↓
जैसे
- स्वयं कषाय करना
- दूसरों में कषाय उत्पन्न कराना
- तपस्वी जनों के चारित्र में दूषण लगाना
- संक्लेश पैदा करने वाले वेष और व्रत धारण करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बह्वारम्भपरिग्रहत्वं नारकस्यायुषः।।15।।

सूत्रार्थ - बहुत आरम्भ और बहुत परिग्रहपने का भाव नरकायु का आस्रव है।।15।।

मायातैर्यग्योनस्य।।16।।

सूत्रार्थ - माया तिर्यंचायु का आस्रव है।।16।।

अल्पारम्भपरिग्रहत्वं मानुषस्य।।17।।

सूत्रार्थ - अल्प आरम्भ और अल्प परिग्रहपने का भाव मनुष्यायु का आस्रव है।।17।।

स्वभावमार्दवं च।।18।।

सूत्रार्थ - स्वभाव की मृदुता भी मनुष्यायु का आस्रव है।।18।।

निःशीलव्रतत्वं च सर्वेषाम्।।19।।

सूत्रार्थ - शीलरहित और व्रतरहित होना सब आयुओं का आस्रव है।।19।।

सरागसंयमसंयमासंयमाकामनिर्जराबालतपांसि दैवस्य।।20।।

सूत्रार्थ - सरागसंयम, संयमासंयम, अकामनिर्जरा और बालतप - ये देवायु के आस्रव हैं।।20।।

सम्यक्त्वं च।।21।।

सूत्रार्थ - सम्यक्त्व भी देवायु का आस्रव है।।21।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आयु

नरकायु	तिर्यंचायु	मनुष्यायु	देवायु
बहुत (अधिक और तीव्र परिणाम) ↓ *बहुत आरम्भ (हिंसादि पाप पोषक क्रियाएँ) *बहुत परिग्रह (ममत्व परिणाम)	मायाचार (छल-कपट)	*अल्प आरम्भ *अल्प परिग्रह *स्वभाव की सरलता (सहज मंद कषाय-बनावटी नहीं)	*स्वभाव की सरलता *सराग संयम (संयम के साथ का राग) *संयमासंयम (त्रस और स्थावर के प्रति क्रमशः संयम और असंयम) *अकाम निर्जरा (बिना इच्छा दुःख सहना) *बालतप (अज्ञानता सहित आचरण) *सम्यक्त्व (मनुष्य और तिर्यंच सम्यक्त्व के साथ देव ही होते हैं)

शील और व्रत का अभाव सभी आयु के आस्रव का कारण है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योगवक्रताविसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः।।22।।

सूत्रार्थ - योगवक्रता और विसंवाद - ये अशुभ नाम कर्म के आस्रव हैं।।22।।

तद्विपरीतं शुभस्य।।23।।

सूत्रार्थ - उससे विपरीत अर्थात् योग की सरलता और अविसंवाद - ये शुभ नामकर्म के आस्रव हैं।।23।।

नाम

अशुभ नाम

* योग कुटिलता (स्वयं के मोक्षमार्ग के प्रतिकूल मन, वचन, काय की चेष्टा)
* विसंवादन (दूसरे को मोक्षमार्ग के प्रतिकूल प्रवर्तन कराना)

शुभ नाम

* सरल मन, वचन, काय की चेष्टा
* अन्य को अन्यथा प्रवर्तन नहीं कराना

योग वक्रता एवं विसंवादन में अन्तर

योग वक्रता	विसंवादन
* स्व अपेक्षा	* पर की अपेक्षा
* मन, वचन, काय की कुटिलता	* कुटिल योग सहित दूसरों को मिथ्यामार्ग के लिए प्रेरित करना
* कारण	* कार्य

दर्शनविशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्वनतिचारोऽभीक्ष्ण-ज्ञानोपयोगसंवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधुसमाधिर्वैयावृत्त्यकरण-मर्हदाचार्यबहुश्रुतप्रवचनभक्तिरावश्यकापरिहाणिर्मार्गप्रभावना प्रवचनवत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य।।24।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रार्थ- दर्शनविशुद्धि, विनयसम्पन्नता, शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन करना, ज्ञान में सतत उपयोग, सतत संवेग, शक्ति के अनुसार त्याग, शक्ति के अनुसार तप, साधु-समाधि, वैयावृत्त्य करना, अरिहन्तभक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुतभक्ति, प्रवचनभक्ति, आवश्यक क्रियाओं को न छोड़ना, मोक्षमार्ग की प्रभावना और प्रवचन वात्सल्य - ये तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव हैं।।24।।

तीर्थंकर नामकर्म के आस्रव के कारणभूत सोलहकारण भावना

भावना	उसका स्वरूप	
1. दर्शन विशुद्धि	अरहंत द्वारा कहे गए मोक्षमार्ग में रुचि	
2. विनय सम्पन्नता	रत्नत्रय और उनके धारकों की विनय	
3. शीलव्रत में अनतिचार	शील और व्रतों का अतिचार रहित पालन	
4. अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग	सम्यग्ज्ञान में निरंतर लगे रहना	
5. संवेग	संसार के दुखों से भयभीत रहना	
6. शक्ति अनुसार त्याग	शक्ति के अनुसार त्याग	
7. शक्ति अनुसार तप	शक्ति के अनुसार तप	
8. साधु समाधि	साधुओं के विघ्न दूर करना	
9. वैयावृत्त्य करण	गुणी पुरुषों के दुख आने पर निर्दोष विधि से सेवा करना	
10. अर्हद् भक्ति	अरहंत में	
11. आचार्य भक्ति	आचार्य में	भावों की विशुद्धि के
12. बहुश्रुत भक्ति	उपाध्याय में	साथ अनुराग
13. प्रवचन भक्ति	शास्त्र में	
14. आवश्यकापरिहाणि	6 आवश्यक क्रियाओं को यथासमय करना	
15. मार्ग प्रभावना	ज्ञान, तप, दान, पूजा द्वारा धर्म का प्रकाश करना	
16. प्रवचन वत्सलत्व	गोवत्सवत् साधर्मियों पर स्नेह रखना	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परात्मनिन्दाप्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य।।25।।

सूत्रार्थ - परनिन्दा, आत्मप्रशंसा, सद्गुणों का उच्छादन और असद्गुणों का उद्भावन - ये नीच गोत्र के आस्रव हैं।।25।।

तद्विपर्ययौ नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य।।26।।

सूत्रार्थ - उनका विपर्यय अर्थात् परप्रशंसा, आत्मनिन्दा, सद्गुणों का उद्भावन और असद्गुणों का उच्छादन तथा नम्रवृत्ति और अनुत्सेक - ये उच्च गोत्र के आस्रव हैं।।26।।

गोत्र

नीच गोत्र	**उच्च गोत्र**
* पर की निन्दा	* पर प्रशंसा
* स्व की प्रशंसा	* स्व निन्दा
* दूसरे के विद्यमान गुण ढाँकना	* दूसरे के विद्यमान गुणों को प्रकट करना
* अपने झूठे गुणों को प्रकट करना	* अपने गुणों की चर्चा नहीं करना
	* नम्रवृत्ति- अपने से गुणों में अधिक की विनय
	* अनुत्सेक - अभिमान न होना

किस जीव के कौन-से गोत्र का उदय होता है

नीच गोत्र	**उच्च गोत्र**	**दोनों में से कोई भी एक**
* सब नारकी	* देव	* पर्याप्त कर्मभूमिया मनुष्य
* सब तिर्यंच	* भोगभूमिया मनुष्य	
* अपर्याप्त मनुष्य		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विघ्नकरणमन्तरायस्य।।27।।

सूत्रार्थ - दानादिक में विघ्न डालना अन्तराय कर्म का आस्रव है।।27।।

अन्तराय

↓

इनमें बाधा डालना

- **दान** (निज व पर के उपकार के लिए देना)
- **लाभ** (फायदा)
- **भोग** (जो एक बार भोगा जाए)
- **उपभोग** (जो बार-बार भोगा जाए)
- **वीर्य** (बल)

"इस अध्याय सम्बन्धी विशेष जानकारी के लिए परिशिष्ट देखें।"

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सप्तम अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
व्रत			
व्रत का लक्षण व भेद	1-2	2	131
प्रत्येक व्रत की रक्षा की 5-5 भावनाएँ	3-8	6	132-134
पाप दुःखदायी व दुःख रूप	9-10	2	135
मैत्री आदि 4 भावना	11	1	136
संवेग-वैराग्य भावनाएँ	12	1	136
पाँच पाप के लक्षण	13-17	5	137-140
व्रती का स्वरूप व भेद	18-20	3	141
सात शील व्रत	21	1	142-144
सल्लेखना का स्वरूप	22	1	144
अतिचार-			
सम्यग्दर्शन के	23	1	145
5 अणुव्रत और 7 शील व्रतों के	24-36	13	146-152
सल्लेखना के	37	1	152
दान			
दान व उसके फल में विशेषता	38-39	2	153-154
	कुल	39	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

हिंसाऽनृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम्।।1।।

सूत्रार्थ - हिंसा, असत्य, चोरी, अब्रह्म और परिग्रह से विरत होना व्रत है।।1।।

व्रत

- **निश्चय व्रत** (राग-द्वेषादि विकल्पों से रहित होना)
- **व्यवहार व्रत** (प्रतिज्ञा पूर्वक पाँच पापों के त्याग-विरति-निवृत्ति रूप नियम लेना)

देशसर्वतोऽणुमहती।।2।।

सूत्रार्थ - हिंसादिक से एकदेश निवृत्त होना अणुव्रत है और सब प्रकार से निवृत्त होना महाव्रत है।।2।।

व्रत के प्रकार

- **अणुव्रत** (हिंसादि से एकदेश निवृत्ति)
  - अहिंसाणुव्रत
  - सत्याणुव्रत
  - अचौर्याणुव्रत
  - स्वदार संतोष\ब्रह्मचर्याणुव्रत
  - परिग्रह परिमाणाणुव्रत
- **महाव्रत** (हिंसादि से पूर्ण निवृत्ति)
  - अहिंसा महाव्रत
  - सत्य महाव्रत
  - अचौर्य महाव्रत
  - ब्रह्मचर्य महाव्रत
  - परिग्रह त्याग महाव्रत

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च।।3।।

सूत्रार्थ -उन व्रतों को स्थिर करने के लिए प्रत्येक व्रत की पाँच-पाँच भावनाएँ हैं।।3।।

पाँच व्रतों की पाँच-पाँच भावनाएँ

भावना - निरन्तर भाने योग्य

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च।।4।।

सूत्रार्थ - वचनगुप्ति, मनोगुप्ति, ईर्यासमिति, आदान-निक्षेपणसमिति और आलोकितपान-भोजन - ये अहिंसाव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।।4।।

अहिंसा व्रत की भावनाएँ

- **गुप्ति** (निवृत्ति)
  - **वचनगुप्ति** (वचन को भले प्रकार रोकना)
  - **मनोगुप्ति** (मन को भले प्रकार रोकना)
- **समिति** (यत्नाचार प्रवृत्ति)
  - **ईर्यासमिति** (चार हाथ आगे की जमीन देख कर चलना)
  - **आदान-निक्षेपण** (सावधानी पूर्वक उठाना-रखना)
  - **आलोकित पानभोजन** (देख-शोधकर सूर्य के प्रकाश में भोजन करना)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचीभाषणं च पञ्च।।5।।

सूत्रार्थ - क्रोधप्रत्याख्यान, लोभप्रत्याख्यान, भीरुत्व प्रत्याख्यान, हास्यप्रत्याख्यान और अनुवीचीभाषण - ये सत्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।।5।।

सत्य व्रत की भावनाएँ

- त्याग (निषेध)
  - **क्रोध**
  - **लोभ**
  - **भय**
  - **हास्य**
- विधि (प्रवृत्ति)
  - **अनुवीची भाषण** (शास्त्र के अनुसार निर्दोष वचन बोलना)

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्षशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च।।6।।

सूत्रार्थ - शून्यागारवास, विमोचितावास, परोपरोधाकरण, भैक्षशुद्धि और सधर्माविसंवाद - ये अचौर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।।6।।

अचौर्य व्रत की भावनाएँ

- आवास संबंधित
  - **शून्यागार वास** (निर्जन स्थान में रहना)
  - **विमोचिता-वास** (दूसरों के द्वारा त्यागे स्थान में निवास करना)
  - **परोपरोधा-करण** (दूसरे को अपने ठहरे हुए स्थान पर आने से नहीं रोकना)
- **भैक्ष शुद्धि** (भिक्षा की शुद्धि रखना)
- **सधर्म अविसंवाद** (साधर्मी के साथ विसंवाद नहीं करना)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्वशरीर-संस्कारत्यागाः पञ्च।।7।।

सूत्रार्थ - स्त्रियों में राग को पैदा करने वाली कथा के सुनने का त्याग, स्त्रियों के मनोहर अंगों को देखने का त्याग, पूर्व भोगों के स्मरण का त्याग, गरिष्ठ और इष्ट रस का त्याग तथा अपने शरीर के संस्कार का त्याग - ये ब्रह्मचर्य व्रत की पाँच भावनाएँ हैं।।7।।

ब्रह्मचर्य व्रत की भावनाएँ

त्याग

	स्त्री राग कथा श्रवण	मनोहर अंग निरीक्षण	पूर्व भोगे हुए विषयों का स्मरण	गरिष्ठ रसों का सेवन	शरीर का संस्कार
सम्बन्धित इन्द्रिय	(कर्ण इन्द्रिय)	(चक्षु इन्द्रिय)	(मन)	(रसना इन्द्रिय)	(स्पर्शन और घ्राण इन्द्रिय)

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पञ्च।।8।।

सूत्रार्थ - मनोज्ञ और अमनोज्ञ इन्द्रियों के विषयों में क्रम से राग और द्वेष का त्याग करना - ये अपरिग्रहव्रत की पाँच भावनाएँ हैं।।8।।

परिग्रह त्याग व्रत की भावनाएँ

मनोज्ञ (जो मन को अच्छे लगें) — अमनोज्ञ (जो मन को अच्छे न लगें)

↓ ऐसे

पञ्चेन्द्रिय विषय-भोगों में

↓

राग-द्वेष का त्याग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अन्य भी भावनाएँ

हिंसादिष्विहामुत्रापायावद्यदर्शनम्।।9।।

सूत्रार्थ - हिंसादिक पाँच दोषों में ऐहिक और पारलौकिक अपाय और अवद्य का दर्शन भावने योग्य है।।9।।

दुःखमेव वा।।10।।

सूत्रार्थ - अथवा हिंसादिक दुःख ही हैं - ऐसी भावना करनी चाहिए।।10।।

हिंसादि से विरक्त होने की भावना

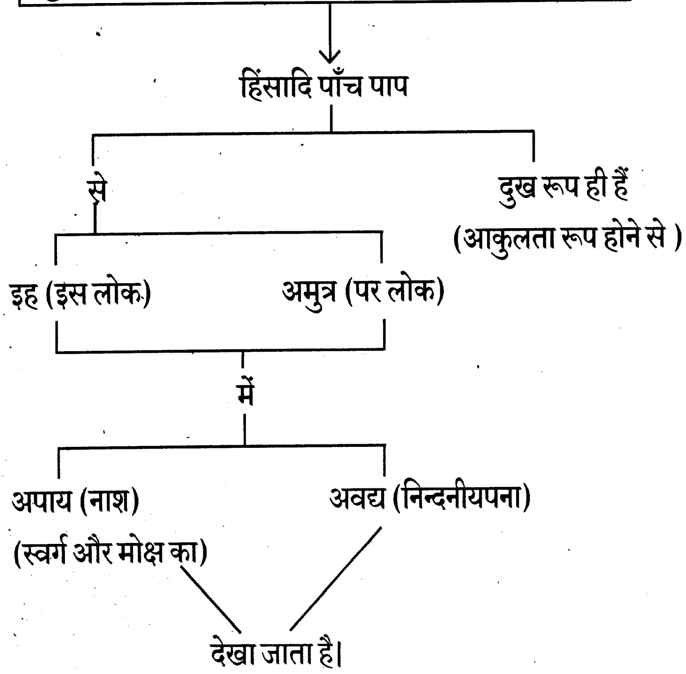

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु।।11।।

सूत्रार्थ - प्राणीमात्र में मैत्री, गुणाधिकों में प्रमोद, क्लिश्यमानों में करुणावृत्ति और अविनेयों में माध्यस्थ भावना करनी चाहिए।।11।।

व्रती के चिन्तन योग्य अन्य भावनाएँ

भावना	**मैत्री** (दूसरे को दुख न हो)	**प्रमोद** (प्रसन्नता के साथ भक्ति अनुराग)	**कारुण्य** (दया)	**माध्यस्थ** (राग-द्वेष पूर्वक पक्षपात न करना)
किनके प्रति	**सत्त्व** (चार गति के सर्व जीव)	**गुणी जन** (सम्यग्दर्शनादि गुणों में अधिक जीव)	**दीन दुखी**	**अविनयी** (जिनवाणी सुनने का गुण नहीं होने वाले हठाग्रही)

जगत्कायस्वभावौ वा संवेगवैराग्यार्थम्।।12।।

सूत्रार्थ - संवेग और वैराग्य के लिए जगत के स्वभाव और शरीर के स्वभाव की भावना करनी चाहिए।।12।।

व्रती को वैराग्य बढ़ाने के लिए

संवेग
* संसार से भय
* धर्म और धर्म के फल में रुचि

वैराग्य
- संसार
- शरीर
- भोगों से

पाँच पाप

हिंसा (असावधानी-प्रमाद पूर्वक प्राणों का वियोग - घात करना)

झूठ (अयत्नाचार-प्रमाद सहित अप्रशस्त[दुख-दायी, मिथ्या] वचन बोलना)

चोरी (बिना दी हुई वस्तु का ग्रहण करना)

अब्रह्म (रति जन्य सुख के लिए स्त्री-पुरुष की जो भी चेष्टा)

परिग्रह (पर द्रव्य में ममत्व परिणाम)

प्रमत्तयोगात्प्राणव्यपरोपणं हिंसा।।13।।

सूत्रार्थ - प्रमत्तयोग से प्राणों का वध करना हिंसा है।।13।।

हिंसा

	भाव	द्रव्य
स्व की	* आत्मा में रागादि भावों की उत्पत्ति	* दीर्घश्वासादिक, हाथ-पैर से अपने अंगों को पीड़ा पहुँचाना, अपघात करना
पर की	* मर्म भेदी वचन, कार्य आदि जिससे दूसरे का अंतरंग पीड़ित हो	* अन्य के शरीर को पीड़ा पहुँचाना अथवा प्राण नाश करना

हिंसा के अन्य प्रकार से भेद

संकल्पी (जान-बूझकर मारने का भाव) (शिकारादि)

आरम्भी (गृह संबंधित कार्यों में होने वाली)

औद्योगिक (व्यापारादि संबंधित कार्यों में होने वाली)

विरोधी (देव, शास्त्र, गुरु आदि की रक्षा संबंधित)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पर जीव के घात रूप हिंसा

अविरमण रूप

* पर जीव के घात में प्रवर्तन न होने पर भी हिंसा का त्याग नहीं करना

परिणमन रूप

* पर जीव के घात में प्रवर्तन करना

हिंसा के त्याग के लिए जानें

हिंस्य

* जिसकी हिंसा हो

↓

* स्वयं उसका घात न करें

हिंसक

* हिंसा करने वाला

↓

* स्वयं वैसे न बनें

हिंसा

* हिंस्य का घात करना, पीड़ा पहुँचाना

↓

* इसका त्याग करें

हिंसा फल

* इस लोक में निन्दा घात व पर लोक में नरकादि दुःख

↓

* इससे भयभीत रहें

15 प्रमाद

5 इन्द्रिय
- स्पर्शन
- रसना
- घ्राण
- चक्षु
- श्रोत्र

4 कषाय
- क्रोध
- मान
- माया
- लोभ

4 विकथा
- स्त्री कथा
- भोजन कथा
- राष्ट्र कथा
- चोर कथा

निद्रा

स्नेह

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्राण

- **भाव प्राण**
  - * ज्ञान-दर्शनादि गुण
- **द्रव्य प्राण**
  - * जिसके संयोग से जीव जीवंत अवस्था व वियोग से मरण अवस्था को प्राप्त हो
    - 5 इन्द्रिय
    - 3 बल
      - मनोबल
      - वचनबल
      - कायबल
    - आयु
    - श्वासोच्छवास

असदभिधानमनृतम्।।14।।

सूत्रार्थ - असत् बोलना अनृत है।।14।।

असत्य

- **विद्यमान वस्तु का निषेध करना**
- **अविद्यमान वस्तु का सद्भाव प्रकट करना**
- **विद्यमान वस्तु को अन्य स्वरूप से कहना**

- **गर्हित (निन्द्य)**
  - दुष्टता व निन्दा रूप हास्य
  - कठोर
  - मिथ्याश्रद्धान
  - प्रलापरूप
  - शास्त्र विरुद्ध आदि
- **अवद्य (पाप संयुक्त)**
  - छेदन
  - भेदन
  - मारण
  - शोषण
  - व्यापार
  - चोरी आदि के वचन
- **अप्रिय**
  - अप्रीतिकारक
  - भयकारक
  - खेदकारक
  - बैर
  - शोक
  - कलहकारक आदि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अदत्तादानं स्तेयम्।।15।।

सूत्रार्थ - बिना दी हुई वस्तु का लेना स्तेय है।।15।।

मैथुनमब्रह्म।।16।।

सूत्रार्थ - मैथुन अब्रह्म है।।16।।

अब्रह्म

- **बहिरंग** (रतिजन्य सुख के लिए पुरुष-स्त्री की जो भी चेष्टा)
- **अंतरंग** (ब्रह्म [आत्मा] में लीनता का अभाव)

मूर्च्छा परिग्रहः।।17।।

सूत्रार्थ - मूर्च्छा परिग्रह है।।17।।

परिग्रह

- **अभ्यंतर (14)** (आत्मा का परिणाम)
  - मिथ्यात्व
  - 4 कषाय
  - 9 नोकषाय
- **बहिरंग (10)** (बाह्य पदार्थ)
  - क्षेत्र-मकान
  - सोना-चाँदी
  - धन-धान्य
  - दास-दासी
  - बर्तन-कपड़े

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निश्शल्यो व्रती।।18।।

सूत्रार्थ - जो शल्यरहित है, वह व्रती है।।18।।

व्रती की विशेषता

शल्य (निरंतर पीड़ा देने वाली वस्तु,जैसे शरीर मे चुभा काँटा) से रहित होना

शल्य

- **मिथ्यात्व** — * अतत्त्वों का श्रद्धान करना
- **माया** — * ठगने की वृत्ति होना
- **निदान** — * भोगों की लालसा होना

अगार्यनगारश्च।।19।।

सूत्रार्थ - उसके अगारी और अनागार - ये दो भेद हैं।।19।।

अणुव्रतोऽगारी।।20।।

सूत्रार्थ - अणुव्रतों का धारी अगारी है।।20।।

व्रती

- **अगारी** — * भाव घर सहित-गृहस्थ व्रती → अणुव्रती
- **अनगारी** — * भाव घर रहित-गृह त्यागी साधु → महाव्रती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गृहस्थ के व्रत

5 अणुव्रत
* मूल व्रत
* अल्प व्रत (समस्त पाप क्रिया का पूर्ण अभाव न होने से)

7 शील व्रत
* उत्तर व्रत
* मूल व्रतों की रक्षा के लिए हैं

सल्लेखना
* जीवन के अंत में स्वीकृत व्रत

अणुव्रत

अहिंसाणुव्रत	सत्याणुव्रत	अचौर्य अणुव्रत	ब्रह्मचर्याणुव्रत	परिग्रह परि-माणाणुव्रत
संकल्पी त्रस हिंसा का त्याग व स्थावर हिंसा को यथासंभव कम करना	स्नेह, बैर, मोह, भय के वश असत्य कहने का त्याग	बिना दिया दूसरे के द्रव्य को ग्रहण करने का त्याग	स्वीकारी या बिना स्वीकारी परस्त्री के संग का त्याग करना	स्वेच्छा से परिग्रह का परिमाण करना

दिग्देशानर्थदण्डविरतिसामायिकप्रोषधोपवासोपभोगपरिभोगपरिमाणा-तिथिसंविभागव्रतसंपन्नश्च।।21।।

सूत्रार्थ - वह दिग्विरति, देशविरति, अनर्थदण्डविरति, सामायिकव्रत, प्रोषधोप-वासव्रत, उपभोगपरिभोगपरिमाणव्रत और अतिथिसंविभागव्रत - इन व्रतों से भी सम्पन्न होता है।।21।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

7 शीलव्रत

गुणव्रत (अणुव्रतों का उपकार करे)

शिक्षाव्रत (मुनिव्रत पालन की शिक्षा मिले)

गुणव्रत:

दिग्विरति	**देशविरति**	**अनर्थदण्ड विरति**
* पूर्वादि 10 दिशाओं में प्रसिद्ध चिह्नों के द्वारा *जीवनपर्यंत* की मर्यादा करना	* ग्रामादिक की *निश्चित काल* के लिए मर्यादा करना	* उपकार न होकर जो प्रवृत्ति केवल पाप का कारण है, उसका त्याग करना

शिक्षाव्रत:

सामायिक व्रत	**प्रोषधोपवास व्रत**	**उपभोगपरिभोग परिमाण व्रत**	**अतिथि संविभाग व्रत**
*समस्त पाप योग क्रिया व राग-द्वेष का त्याग, साम्यभाव को प्राप्त हो शुद्ध आत्मस्वरूप में लीन होना	*पर्व के दिनों में सकल आरम्भ, विषय-कषाय व आहार का त्याग करना	*न्यायरूप उपभोग परिभोग में काल की मर्यादा लेकर त्याग करना	*मोक्ष उद्यमी के लिए अपने भोजन, धनादि का विभाग करना

अनर्थदण्ड

अपध्यान	**पापोपदेश**	**प्रमादचरित**	**हिंसाप्रदान**	**अशुभश्रुति**
*दूसरे की जय-पराजय, मृत्यु आदि कैसे हो, ऐसा मन में विचार करना	*प्राणियों के हिंसा के कारण भूत वाणिज्य का प्रसार करने वाले आरम्भ आदि के वचन	*बिना प्रयोजन के पाप कार्य करना	* हिंसा के उपकरणों को प्रदान करना (देना)	*हिंसा व राग आदि को बढ़ाने वाली कथा का सुनना व शिक्षा देना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उपभोग-परिभोग

उपभोग	परिभोग
* जो वस्तु एक बार ही भोगने में आती है	* जो वस्तु अनेक बार भोगने में आती है
जैसे- * भोजन, पानी, इत्र, पुष्प, माला आदि	* गृह, वाहन, वस्त्र, आभूषण आदि

अतिथि संविभाग के योग्य सामग्री

भिक्षा	उपकरण	औषध	प्रतिश्रय (रहने का स्थान)
*निर्दोष शुद्ध आहार	* रत्नत्रय बढ़ाने में सहायक शास्त्र आदि	* योग्य औषधि	* ध्यान-अध्ययन के लिए

मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता।।22।।

सूत्रार्थ - तथा वह मारणान्तिक सल्लेखना का प्रीतिपूर्वक सेवन करने वाला होता है।।22।।

सल्लेखना (अच्छे प्रकार से कृश करना)

भेद	काय (बाहरी शरीर)	कषाय (भीतरी परिणाम)
कैसे करें	अनशन, रस परित्यागादि के क्रम से	शुभ ध्यान, स्वाध्यायादि पूर्वक निज परमात्म स्वरूप के सेवन से
किस प्रकार कृश करें	इतना ही कृश करें कि परिणाम आकुलित होकर, आराधना से चलायमान न हों	इस प्रकार कि मोह, राग, द्वेषादि से अपना ज्ञान-दर्शन रूप परिणाम मलिन न हो
व्रती मरण के अंत में इसे प्रीतिपूर्वक स्वीकार करता है।		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतिचार

शङ्काकाङ्क्षाविचिकित्साऽन्यदृष्टिप्रशंसासंस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतिचाराः ||23||

सूत्रार्थ - शंका, कांक्षा, विचिकित्सा, अन्यदृष्टिप्रशंसा और अन्यदृष्टिसंस्तव -ये सम्यग्दृष्टि के पाँच अतिचार हैं ||23||

सम्यग्दर्शन के अतिचार

शंका
* आत्मा को अखण्ड अविनाशी जानकर भी 7 प्रकार के भय को प्राप्त होना

कांक्षा
* इस लोक परलोक में भोगादिक सामग्री की वांछा होना

विचिकित्सा
* दुःखी, रोगी दरिद्री इत्यादि मनुष्य, तिर्यंच और मुनिराज के शरीर को देख ग्लानि करना

अन्यदृष्टि
* मिथ्यादृष्टि का ज्ञान, चारित्र आदि को देख

प्रशंसा
* मन में भला जानना

संस्तव
* वचनों से प्रशंसा करना

सम्यग्दृष्टि को इन दोषों का खेद हो और ये यदा-कदा हों तो ये अतिचार हैं, अन्यथा अनाचार होते हैं।

व्रतभंग के लिए सहायक परिणाम

अतिक्रम
* मन में व्रतभंग का विचार उठना

व्यतिक्रम
* व्रत का उल्लंघन करना

अतिचार
* विषयों में प्रवृत्ति

अनाचार
* विषयों में अतिशय आसक्तिरूप प्रवृत्ति

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अतिचार	अनाचार
*व्रत का एकदेश भंग	*व्रत का पूर्ण भंग
*अज्ञान, असावधानी, मोहवश होते हैं	*जान-बूझकर करना
*संस्कारवश - क्षणिक	*अभिप्राय पूर्वक
*आत्मग्लानि सहित हो जाने वाला	*अच्छा समझकर किया जाने वाला
*'यह गलत किया' ऐसा भाव होता है	*'किया तो किया, क्या गलत है' ऐसा भाव होता है
*पर्वत जितना होने पर भी हल्का	*तुच्छ होने पर भी बड़ा अपराध

व्रतशीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम्।।24।।

सूत्रार्थ - व्रतों और शीलों में पाँच-पाँच अतिचार हैं, जो क्रम से इस प्रकार हैं।।24।।

व्रतों के पाँच-पाँच अतिचार

बन्धवधच्छेदातिभारारोपणान्नपाननिरोधाः।।25।।

सूत्रार्थ - बन्ध, वध, छेद, अतिभार का आरोपण और अन्नपान का निरोध - ये अहिंसा अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं।।25।।

अहिंसाणुव्रत

बन्ध	वध	छेद	अतिभारारोपण	अन्नपाननिरोध
किसी को अपने इष्ट स्थान में जाने से रोकना	डंडा, चाबुक, आदि से प्राणियों को मारना	कान, नाक, आदि अवयवों को भेदना	उचित भार से अधिक भार का लादना	भूख-प्यास में बाधा कर अन्न-पान का रोकना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्योपदेशरहोभ्याख्यानकूटलेखक्रियान्यासापहारसाकारमन्त्रभेदाः ||26||

सूत्रार्थ - मिथ्योपदेश, रहोभ्याख्यान, कूटलेखक्रिया, न्यासापहार और साकार-मन्त्रभेद - ये सत्याणुव्रत के पाँच अतिचार हैं||26||

सत्याणुव्रत

मिथ्योपदेश	रहोभ्याख्यान	कूटलेखक्रिया	न्यासापहार	साकारमंत्र भेद
मोक्षमार्ग से विपरीत उप-देश देना	स्त्री-पुरुष के एकांत आच-रण को प्रकट कर देना	अन्य के बारे में झूठा लेख लिखना	धरोहर रखने वाला आकर कम वापस माँगे तो कम ही दे देना	किसी कारण दूसरे के मन की बात जान उसे अन्य को प्रकट कर देना

स्तेनप्रयोगतदाहृतादानविरुद्धराज्यातिक्रमहीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपक-व्यवहाराः ||27||

सूत्रार्थ - स्तेनप्रयोग, स्तेन आहृतादान, विरुद्धराज्यातिक्रम, हीनाधिक मानोन्मान और प्रतिरूपकव्यवहार-ये अचौर्य अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं||27||

अचौर्याणुव्रत

स्तेन प्रयोग	स्तेन आहृतादान	विरुद्ध राज्यातिक्रम	हीनाधिक मानोन्मान	प्रतिरूपक व्यवहार
किसी को चोरी के लिए प्रेरित करना, कराना व अनुमोदना करना	चोरी की वस्तु का ग्रहण	राज्य आज्ञा के विरुद्ध चलना	लेने के व देने के माप कम-ज्यादा रखना	उत्तम वस्तु में खोटी मिला कर अच्छी कहकर बेचना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परविवाहकरणेत्वरिकापरिगृहीतापरिगृहीतागमनानङ्गक्रीड़ाकाम-तीव्राभिनिवेशाः ||28||

सूत्रार्थ- परविवाहकरण, इत्वरिकापरिगृहीतागमन, इत्वरिका-अपरिगृहीतागमन, अनङ्गक्रीड़ा और कामतीव्राभिनिवेश - ये स्वदारसन्तोष अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं||28||

ब्रह्मचर्याणुव्रत

परविवाह करण	इत्वरिका		अनंगक्रीड़ा	काम तीव्रा-भिनिवेश
	परिगृहीता गमन	अपरिगृहीता गमन		
दूसरों का विवाह कराना	जिसका कोई स्वामी हो	जिसका कोई स्वामी न हो	काम सेवन के निश्चित अंगों को छोड़ शेष अंगों द्वारा काम सेवन करना	काम सेवन की तीव्र अभिलाषा रखना
	↓ ऐसी व्यभिचारिणी स्त्री के यहाँ जाना-आना आदि करना			

क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः ||29||

सूत्रार्थ - क्षेत्र और वास्तु के प्रमाण का अतिक्रम, हिरण्य और सुवर्ण के प्रमाण का अतिक्रम, धन और धान्य के प्रमाण का अतिक्रम, दासी और दास के प्रमाण का अतिक्रम तथा कुप्य के प्रमाण का अतिक्रम ये परिग्रहपरिमाण अणुव्रत के पाँच अतिचार हैं||29||

परिग्रह परिमाणाणुव्रत

बहिरंग परिग्रह

क्षेत्र-वास्तु	हिरण्य-स्वर्ण	धन-धान्य	दासी-दास	कुप्य
(जमीन-घर)	(चाँदी-सोना)	(गोधनादि-अनाज आदि)		(वस्त्रादि)

इनके प्रमाण का उल्लंघन करना

गुणव्रतों के अतिचार

ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रमक्षेत्रवृद्धिस्मृत्यन्तराधानानि।।30।।

सूत्रार्थ - ऊर्ध्वव्यतिक्रम, अधोव्यतिक्रम, तिर्यग्व्यतिक्रम, क्षेत्रवृद्धि और स्मृत्यन्तराधान - ये दिग्विरतिव्रत के पाँच अतिचार हैं।।30।।

दिग्विरति

व्यतिक्रम (मर्यादा का उल्लंघन)

- **ऊर्ध्व** * ऊपर
- **अधो** * नीचे
- **तिर्यग्** * 4 दिशा व 4 विदिशा

क्षेत्रवृद्धि * मर्यादा की हुई दिशा के बढ़ाने का अभिप्राय रखना

स्मृत्यन्तराधान * मर्यादा को याद नहीं रखना

आनयनप्रेष्यप्रयोगशब्दरूपानुपातपुद्गलक्षेपाः।।31।।

सूत्रार्थ - आनयन, प्रेष्यप्रयोग, शब्दानुपात, रूपानुपात और पुद्गलक्षेप - ये देशविरति व्रत के पाँच अतिचार हैं।।31।।

देशविरति

आनयन **प्रेष्यप्रयोग** **शब्दानुपात** **रूपानुपात** **पुद्गलक्षेप**

मर्यादित क्षेत्र से बाहर

- **आनयन** - की वस्तु मँगाना व किसी को बुलाना
- **प्रेष्यप्रयोग** - दूसरे व्यक्ति को काम बताना
- **शब्दानुपात** - दूसरे को खाँसी आदि इशारों से अपना अभिप्राय बताना
- **रूपानुपात** - अपना रूप दिखा कार्य करवाना
- **पुद्गलक्षेप** - कंकर आदि पुद्गल फेंक कर अपना कार्य करवाना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कन्दर्पकौत्कुच्यमौखर्यासमीक्ष्याधिकरणोपभोगपरिभोगानर्थक्यानि।।32।।

सूत्रार्थ - कन्दर्प, कौत्कुच्य, मौखर्य, असमीक्ष्याधिकरण और उपभोगपरिभोगा-नर्थक्य - ये अनर्थदण्डविरतिव्रत के पाँच अतिचार हैं।।32।।

अनर्थदण्डविरति

कन्दर्प	कौत्कुच्य	मौखर्य	असमीक्ष्या-धिकरण	उपभोगपरिभोग अनर्थक्य
रागभाव की तीव्रतावश हास्य मिश्रित असभ्य वचन बोलना	कन्दर्प के साथ शारीरिक कुचेष्टा करना	धीठता पूर्वक कुछ भी बक-वास करना	प्रयोजन विचारे बिना अधिक प्रवृत्ति करना	आवश्यकता से अधिक वस्तु का संग्रह करना

शिक्षाव्रत के अतिचार

योगदुष्प्रणिधानानादरस्मृत्यनुपस्थानानि।।33।।

सूत्रार्थ - काययोगदुष्प्रणिधान, वचनयोगदुष्प्रणिधान, मनोयोगदुष्प्रणिधान, अनादर और स्मृति का अनुपस्थान -ये सामायिक व्रत के पाँच अतिचार हैं।।33।।

सामायिक व्रत

- **दुष्प्रणिधान (सामायिक काल में अन्यथा प्रवर्तन)**
  - **काय** — * शरीर के अंगोपांगादि को निश्च-लता रहित रखना
  - **वचन** — *अशुद्ध उच्चारण, सही अर्थ का ज्ञान न होना
  - **मन** — *अर्थ में मन नहीं लगाना
- **अनादर** — * उत्साह रहित सामायिक करना
- **स्मृति अनुपस्थान** — * एकाग्रता के अभाव में पाठ आदि भूल जाना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अप्रत्यवेक्षिताप्रमार्जितोत्सर्गादानसंस्तरोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि ।।34।।

सूत्रार्थ - अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित भूमि में उत्सर्ग, अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित वस्तु का आदान, अप्रत्यवेक्षित-अप्रमार्जित संस्तर का उपक्रमण, अनादर और स्मृति का अनुपस्थान -ये प्रोषधोपवास व्रत के पाँच अतिचार हैं।।34।।

प्रोषधोपवास व्रत

अप्रत्यवेक्षित अप्रमार्जित
(बिना देखे - बिना शोधे)

उत्सर्ग	**आदान**	**संस्तर**	**अनादर**	**स्मृति अनुपस्थान**
*जमीन पर मल-मूत्र का त्याग करना	*पूजा के उपकरण आदि व स्वयं के वस्त्रादि ले लेना	*भूमि पर आसनादि बिछाना	* उत्साह रहित आवश्यक कार्य करना	* आवश्यक धर्म कार्य करना भूल जाना

सचित्तसम्बन्धसम्मिश्राभिषवदुष्पक्वाहाराः ।।35।।

सूत्रार्थ - सचित्ताहार, संबन्धाहार, संमिश्राहार, अभिषवाहार और दुःपक्वाहार - ये उपभोगपरिभोगपरिमाण व्रत के पाँच अतिचार हैं।।35।।

उपभोग परिभोग परिमाण व्रत
(सभी आहार से सम्बन्धित)

सचित्त (चेतना सहित पदार्थ)

आहार	**संबंधाहार**	**सम्मिश्राहार**	**अभिषवाहार**	**दुःपक्वाहार**
*जैसे-कच्चे फल,फूलादि	* से सम्बन्ध प्राप्त हुआ आहार	* से मिश्रित हुआ आहार	*गरिष्ठ आहार	* अधपका, अधिक पका आहार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सचित्तनिक्षेपापिधानपरव्यपदेशमात्सर्यकालातिक्रमाः ||36||

सूत्रार्थ - सचित्तनिक्षेप, सचित्तापिधान, परव्यपदेश, मात्सर्य और कालातिक्रम - ये अतिथिसंविभाग व्रत के पाँच अतिचार हैं||36||

अतिथि संविभाग व्रत

(सभी आहार दान से सम्बन्धित)

- **सचित्त**
  - **निक्षेप** - *सचित्त आहार रखना
  - **अपिधान** - *सचित्त द्वारा आहार को ढाँकना
- **परव्यपदेश** - *'अन्य की वस्तु है' - यह कह कर दान देना
- **मात्सर्य** - *अनादर से देना और अन्य दातार से ईर्ष्या करना
- **कालातिक्रम** - *भिक्षा काल का उल्लंघन करके दान देना

जीवितमरणाशंसामित्रानुरागसुखानुबन्धनिदानानि||37||

सूत्रार्थ - जीविताशंसा, मरणाशंसा, मित्रानुराग, सुखानुबन्ध और निदान - ये सल्लेखना के पाँच अतिचार हैं||37||

सल्लेखना अतिचार

- **आशंसा (चाह)**
  - **जीवित** - *जीने की
  - **मरण** - *मरने की
- **मित्रानुराग** - * मित्रों को याद करना
- **सुखानुबंध** - *पूर्व में भोगे भोगों का स्मरण करना
- **भोगाकांक्षा** - * आगामी भोगों की वांछा करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्।।38।।

सूत्रार्थ - अनुग्रह (निज व पर के कल्याण) के लिए अपनी वस्तु का त्याग करना दान है।।38।।

दान

(उपकार के लिए स्व की वस्तु का त्याग)

स्व का उपकार
- * लोभ वृत्ति कम होती है
- * आत्मा त्याग की तरफ झुकता है
- * पुण्यबंध होता है

पर का उपकार
- * जीवन यात्रा में मदद
- * धर्म साधना में सहायता

विधिद्रव्यदातृपात्रविशेषात्तद्विशेषः।।39।।

सूत्रार्थ - विधि, देय् वस्तु, दाता और पात्र की विशेषता से उसकी विशेषता है।।39।।

दान के फल में विशेषता के कारण

विधि विशेष
- * नवधा भक्ति में विशेषता

द्रव्य विशेष
- * देय वस्तु जिससे तप स्वाध्याय आदि की वृद्धि हो

दाता विशेष
- *दान देने वाला जो ईर्ष्या, खेद रहित सात गुणों से युक्त हो

पात्रविशेष
- * दान लेने वाला मोक्ष के कारणभूत सम्यग्दर्शनादि गुणों से युक्त हो

  - उत्तम — *मुनिराज
  - मध्यम — *व्रती श्रावक
  - जघन्य — *अव्रती सम्यग्दृष्टि

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

विधि विशेष

- **संग्रह/प्रतिग्रह** — *'आईये पधारिये' ऐसा निवेदन
- **उच्च स्थान** — *ऊँचा आसन देना
- **पादोदक** — *प्रासुक जल से पैर धोना
- **अर्चन** — *योग्य पूजा स्तवन करना
- **प्रणाम** — *योग्य नमस्कार
- **शुद्धि** (रखना व बोलना)
  - मन
  - वचन
  - काय
  - भोजन की

दाता के सात गुण

भक्ति	तुष्टि	श्रद्धा	विज्ञान	अलोलुप	सात्त्विक	क्षमा
प्रमाद रहित, ज्ञान सहित	पात्र प्राप्ति पर अत्यंत खुशी	दान कल्याण -कारी है ऐसा विश्वास	योग्य भक्ष्य पदार्थ का दान देना	सांसारिक लाभ की इच्छा रहित होना	धन थोड़ा होने पर भी दान के प्रति उत्साह	किसी पर भी रोष नहीं करना

दान के प्रकार

- आहार
- औषध
- ज्ञान
- अभय (प्राण दान)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अष्टम अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
बंध के कारण	1	1	155-156
बंध और बंध के भेद	2-3	2	157-158
द्रव्य बंध प्रकृति बंध	4-13	10	159-173
स्थिति बंध -उत्कृष्ट	14-17	4	174-177
-जघन्य	18-20	3	174-175
अनुभाग बंध	21-23	3	177-179
प्रदेश बंध	24	1	179-180
पुण्य व पाप प्रकृतियाँ	25-26	2	180-181
	कुल	26	

मिथ्यादर्शनाविरतिप्रमादकषाययोगा बन्धहेतवः ||1||

सूत्रार्थ - मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये बन्ध के हेतु हैं||1||

बंध के कारण

- **मिथ्यादर्शन(2)** (अतत्त्वश्रद्धान)
  - **अगृहीत** (नैसर्गिक)
  - **गृहीत** (परोपदेश पूर्वक)
    - एकान्त
    - विपरीत
    - संशय
    - विनय
    - अज्ञान
- **अविरति(12)** (इन्द्रिय विषयों व प्राणी हिंसा का त्याग न होना)
  - **6 इन्द्रिय अविरति**
  - **6 प्राणी अविरति**
- **प्रमाद(15)** (अच्छे कार्यों में अनुत्साह)
- **कषाय(25)** (आत्मा को कसे)
- **योग(15)** (आत्मा के प्रदेशों का परिस्पन्दन)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

योग (15)

मनोयोग(4)
- सत्य मनोयोग
- असत्य मनोयोग
- उभय मनोयोग
- अनुभय मनोयोग

वचनयोग(4)
- सत्य वचन योग
- असत्य वचन योग
- उभय वचन योग
- अनुभय वचन योग

काययोग(7)
- औदारिक काय योग
- औदारिक मिश्र काय योग
- वैक्रियिक काय योग
- वैक्रियिक मिश्र काययोग
- आहारक काय योग
- आहारक मिश्र काय योग
- कार्माण काय योग

किस गुणस्थान तक बंध के कौन-से कारण होते हैं

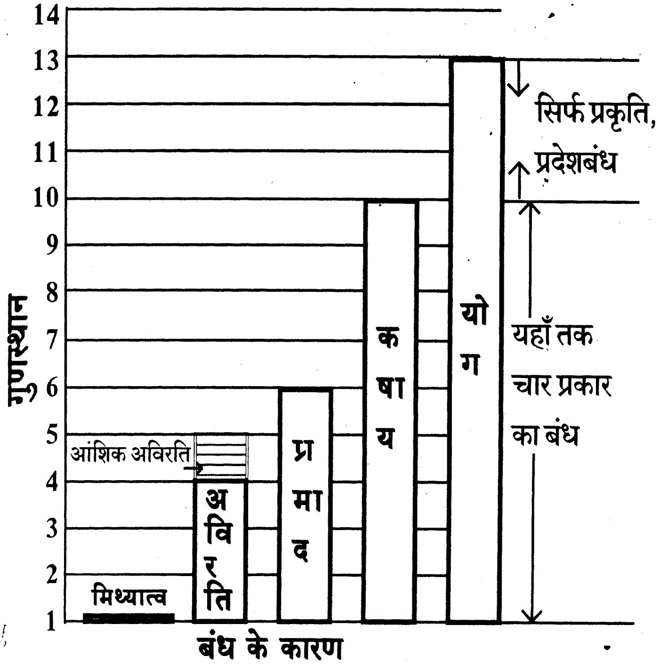

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान्पुद्गलानादत्ते स बन्धः||2||

सूत्रार्थ - कषाय सहित होने से जीव कर्म के योग्य पुद्गलों को ग्रहण करता है, वह बंध है||2||

बंध क्या है

* क्या हो रहा है? ⟶ बंध
* किसका ? ⟶ योग्य कार्मण वर्गणा का (पुद्गल का)
* किसे ? ⟶ कषाय सहित जीव को (संसारी मूर्तिक जीव)
* कब से ? ⟶ अनादि से

कर्म बंध चक्र

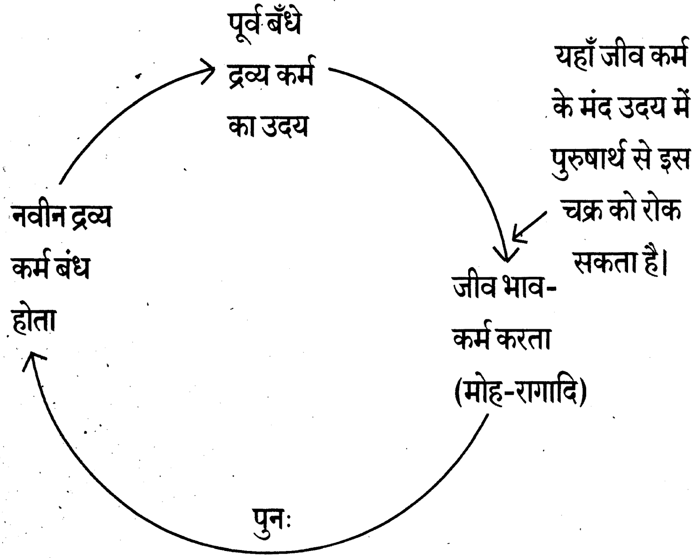

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

द्रव्यकर्म-भावकर्म निमित्त-उपादान

कार्य	उपादान कारण(कर्ता)	निमित्त कारण
	(स्वयं कार्य रूप परिणमे)	(स्वयं कार्य रूप न परिणमे, पर कार्य की उत्पत्ति में सहायक हो)
द्रव्य बंध (द्रव्य कर्म)	कार्मण वर्गणा	जीव के योग व कषाय
भाव बंध (भाव कर्म)	जीव के योग कषाय की पूर्व पर्याय	उदय/उदीरणा को प्राप्त कर्म
दृष्टांत-घड़ा	मिट्टी	कुम्भकार

प्रकृतिस्थित्यनुभवप्रदेशास्तद्विधयः।।3।।

सूत्रार्थ - उसके प्रकृति, स्थिति, अनुभव और प्रदेश - ये चार भेद हैं।।3।।

बंध

नाम	प्रकृति	प्रदेश	स्थिति	अनुभाग
स्वरूप (कर्म का..	स्वभाव	परमाणुओं की संख्या	आत्मा के साथ रहने की मियाद	फल दान देने की हीनाधिक शक्ति
कर्म का	द्रव्य	क्षेत्र	काल	भाव
कारण	योग से		कषाय से	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आद्यो ज्ञानदर्शनावरणवेदनीयमोहनीयायुर्नामगोत्रान्तरायाः ।।4।।

सूत्रार्थ - पहला अर्थात् प्रकृतिबन्ध ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय रूप है।।4।।

पञ्चनवद्व्यष्टाविंशतिचतुर्द्विचत्वारिंशद्द्विपञ्चभेदा यथाक्रमम्।।5।।

सूत्रार्थ -आठ मूल प्रकृतियों के अनुक्रम से पाँच, नौ, दो, अट्ठाईस, चार, ब्यालीस,दो और पाँच भेद हैं।।5।।

कर्म के भेद

सामान्य से	1-कर्म 2-घातिया कर्म-अघातिया कर्म 3-द्रव्यकर्म, भाव कर्म, नो कर्म
मूल प्रकृति	8
उत्तर प्रकृति	148 (संख्यात)
भावों की अपेक्षा	असंख्यात
परमाणुओं की अपेक्षा	अनंत
अविभाग प्रतिच्छेद अपेक्षा	अनंतानंत

द्रव्य कर्म क्या? → जीव के रागादि परिणामों के निमित्त से जो कार्मण वर्गणा जीव के साथ संबंध को प्राप्त होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकृति बंध (आठ मूल कर्म)

घातिया कर्म (आत्मा के अनुजीवी गुणों को घाते) — अघातिया कर्म (प्रतिजीवी गुणों को घाते)

नाम	ज्ञानावरण	दर्शनावरण	अंतराय	मोहनीय	आयु	नाम	गोत्र	वेदनीय
भेद	5	9	5	28	4	42	2	2
स्वरूप (प्रकृति)	जीव के ज्ञान को आवृत करें (ढकें)	जीव के दर्शन को आवृत करें (ढकें)	जीव के वीर्य को आवृत करें (ढकें)	जीव के सम्यक्त्व व चारित्र को घाते	जीव को -शरीर में रोके रखे	जीव को -गत्यादि रूप परिणमावे -शरीरादि बनवावे	जीव को -उच्च-नीच पना प्राप्त करवाये	जीव को -आकुलता हो
दृष्टांत	मूर्ति पर पड़ा पर्दा	द्वारपाल	खजांची	मदिरा	बेड़ी	चित्रकार	कुम्भकार	शहद लपेटी तलवार की धार
इसके अभाव में कौन-सा गुण प्रकट होता है	अनंत ज्ञान	अनंत दर्शन	अनंत वीर्य	अनंत सुख	अवगाहनत्व	सूक्ष्मत्व	अगुरुलघुत्व	अव्याबाधत्व

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुण

अनुजीवी
* भाव स्वरूप गुण
* जैसे- ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य

प्रतिजीवी
* अभाव स्वरूप धर्म
* नास्तित्व, अचेतनत्व सूक्ष्मत्व, अमूर्तत्व

मतिश्रुतावधिमनःपर्ययकेवलानाम्।।6।।

सूत्रार्थ - मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान - इनको आवरण करनेवाले कर्म पाँच ज्ञानावरण हैं।।6।।

ज्ञानावरण

5 ज्ञान को आवरण करने वाले 5 भेद

मति ज्ञानावरण	श्रुत ज्ञानावरण	अवधि ज्ञानावरण	मनःपर्यय ज्ञानावरण	केवल ज्ञानावरण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चक्षुरचक्षुरवधिकेवलानां
निद्रानिद्रानिद्राप्रचलाप्रचलाप्रचलास्त्यानगृद्धयश्च।।7।।

सूत्रार्थ - चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन - इन चारों के *चार आवरण तथा निद्रा, निद्रा-निद्रा, प्रचला, प्रचला-प्रचला और* स्त्यानगृद्धि - ये पाँच निद्रादिक ऐसे नौ दर्शनावरण हैं।।7।।

दर्शनावरण

(प्रत्येक भेद के साथ 'दर्शनावरण' लगावें)

4 आवरण — **चक्षु**, **अचक्षु**, **अवधि**, **केवल**

5 निद्रा

निद्रा	**निद्रा-2**	**प्रचला**	**प्रचला-2**	**स्त्यानगृद्धि**
*थकावट को दूर करने के लिए *गमन करते हुए रुकना, बैठना, गिरना	* नींद पर नींद *नेत्रों को न उघाड़ पाना	* शोक, श्रम, मद से उत्पन्न * नेत्र कुछ उघाड़े हुए सोना, ऊँघना	*खड़े-2, बैठे-2 चलते-2 पुनः-2 नींद आए * मुख से लार आना, हाथ पैर चलाना	* वीर्य शक्ति विशेष होने से नींद में कठिन कार्य करना * उठा हुआ भी सोना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दर्शन

- **चक्षु** – *नेत्रजन्य मति ज्ञान से पहले
- **अचक्षु** – *नेत्र के सिवाय शेष इन्द्रियों व मन संबंधी मति ज्ञान से पहले
- **अवधि** – *अवधिज्ञान से पहले
- **केवल** – *केवलज्ञान के साथ

होने वाला सामान्य प्रतिभास

यहाँ 4 दर्शन बताए हैं, ऊपर इनको आवरण करने वाले 4 दर्शनावरण कर्म जानना।

दर्शन-ज्ञान का व्यापार

अल्पज्ञ (छद्मस्थ)	सर्वज्ञ (केवली)
*दर्शन पहले फिर ज्ञान	*दर्शन और ज्ञान साथ में
*क्रमशः	*युगपद्
*क्षायोपशमिक	*क्षायिक

मनःपर्ययज्ञान उत्पत्ति क्रम

अचक्षु दर्शन ⟶ ईहा मतिज्ञान ⟶ मनःपर्यय ज्ञान

मनःपर्यय दर्शन न होने से उसे आवरण करने वाला कर्म भी नहीं होता है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सदसद्वेद्ये ||8||

सूत्रार्थ - सद्वेद्य और असद्वेद्य - ये दो वेदनीय हैं||8||

वेदनीय

साता
- * सुख रूप अनुभव
- **उपचार से** * अनुकूल सामग्री की प्राप्ति

असाता
- *दुःख रूप अनुभव
- *प्रतिकूल सामग्री की प्राप्ति

चारों गतियों में दोनों का उदय होता है।

आत्मा का सुख गुण

स्वभाव परिणमन → निराकुलता → अतीन्द्रिय सुख

विभाव परिणमन → आकुलता → इन्द्रिय सुख, इन्द्रिय दुःख → इनमें वेदनीय कर्म निमित्त है

दर्शनचारित्रमोहनीयाकषायकषायवेदनीयाख्यास्त्रिद्विनवषोडशभेदाः सम्यक्त्वमिथ्यात्वतदुभयान्यकषायकषायौ हास्यरत्यरतिशोक-भयजुगुप्सास्त्रीपुन्नपुंसकवेदा अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यानसंज्वलनविकल्पाश्चैकशः क्रोधमानमायालोभाः||9||

सूत्रार्थ-दर्शनमोहनीय, चारित्रमोहनीय, अकषायवेदनीय और कषाय वेदनीय-इनके क्रम से तीन, दो, नौ और सोलह भेद हैं। सम्यक्त्व, मिथ्यात्व और तदुभय -ये तीन दर्शनमोहनीय हैं। अकषायवेदनीय और कषायवेदनीय ये दो चारित्र-मोहनीय हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद और नपुंसकवेद- ये नौ अकषायवेदनीय हैं तथा अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान और संज्वलन- ये प्रत्येक क्रोध, मान, माया, लोभ के भेद से सोलह कषायवेदनीय हैं||9||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहनीय (28)

नोट - सभी में "जिसके उदय से" शुरू में लगाएँ

दर्शन मोहनीय (3)
*सम्यक्त्व गुण का घात हो

- **सम्यक्त्व** — *सम्यक्त्व का मूल घात न हो पर दोष लगे
- **मिथ्यात्व** — *अतत्त्व श्रद्धान हो
- **सम्यक्त्व मिथ्यात्व** — *मिश्र परिणाम, तत्त्व अतत्त्व दोनों श्रद्धान हो

चरित्र मोहनीय (2)
*चारित्र गुण का घात हो

- **अकषाय वेदनीय (9)** (नोकषाय) किंचित् कषाय हो
- **कषाय वेदनीय (16)**

अकषाय वेदनीय (9)

- **हास्य** — *हँसी आए
- **रति** — *देशादि में उत्सुकता हो
- **अरति** — *देशादि में उत्सुकता न हो
- **शोक** — *इष्ट का वियोग होने पर दुःख हो
- **भय** — *उद्वेग (चित्त में घबराहट) हो
- **जुगुप्सा** — * अपने दोष छुपाने व दूसरे के प्रकट करने एवं ग्लानि का भाव हो
- **वेद**
  - **स्त्री** — पुरुष से रमने का भाव इत्यादि
  - **पुरुष** — स्त्री से रमने का भाव इत्यादि
  - **नपुसंक** — स्त्री-पुरुष दोनों से रमने का भाव इत्यादि

कषाय वेदनीय (16)

अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण, संज्वलन — प्रत्येक के क्रोध, मान, माया, लोभ

अनंतानुबंधी	**अप्रत्याख्यानावरण**	**प्रत्याख्यानावरण**	**संज्वलन**
*स्वरूपाचरण/सम्यक्त्वाचरण का घात हो	*देश चारित्र का घात हो	*सकल चारित्र का घात हो	*यथाख्यात चारित्र का घात हो
*अनंत संसार (मिथ्यात्व) के साथ बँधे	*किंचित् त्याग न होने दे	*पूर्ण त्याग न होने दे	*जो संयम के साथ प्रज्वलित रहे

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कषायों के उत्कृष्ट-जघन्य स्थान के दृष्टांत

	उत्कृष्ट	अनुत्कृष्ट	अजघन्य	जघन्य
क्रोध	शिला भेद	पृथिवी भेद	धूलि रेखा	जल रेखा
मान	शैल	अस्थि	काष्ठ	बेंत
माया	बाँस की जड़	मेढ़े का सींग	गोमूत्र	खुरपा
लोभ	किरमिची रंग	चक्रमल	शरीर का मैल	हल्दी का रंग

* ***क्रोध, मान, माया व लोभ में से एक समय में एक का ही उदय होता है।***
* ***अंतर्मुहूर्त में उदय नियम से बदल जाता है।***
* ***बंध चारों का प्रति समय होता है।***

नारकतैर्यग्योनमानुषदैवानि।।10।।

सूत्रार्थ - नरकायु, तिर्यंचायु, मनुष्यायु और देवायु - ये चार आयु हैं।।10।।

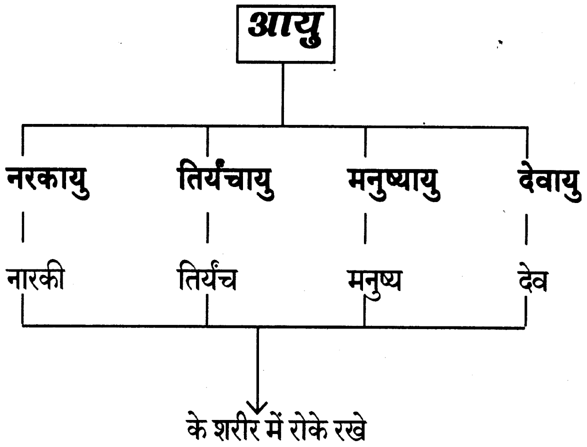

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गतिजातिशरीराङ्गोपाङ्गनिर्माणबंधनसंघातसंस्थानसंहननस्पर्शरसगंध-वर्णानुपूर्व्यागुरुलघूपघातपरघातातपोद्योतोच्छ्वासविहायोगतयः प्रत्येकशरीरत्रससुभगसुस्वरशुभसूक्ष्मपर्याप्तिस्थिरादेययशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च।।11।।

सूत्रार्थ - गति, जाति, शरीर, अंगोपांग, निर्माण, बन्धन, संघात, संस्थान, संहनन, स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, आनुपूर्व्य, अगुरुलघु, उपघात, परघात, आतप, उद्योत, उच्छ्वास और विहायोगति तथा प्रतिपक्षभूत प्रकृतियों के साथ अर्थात् साधारण शरीर और प्रत्येक शरीर, स्थावर और त्रस, दुर्भग और सुभग, दुःस्वर और सुस्वर, अशुभ और शुभ, बादर और सूक्ष्म, अपर्याप्त और पर्याप्त, अस्थिर और स्थिर, अनादेय और आदेय, अयशःकीर्ति और यशःकीर्ति एवं तीर्थंकरत्व - ये ब्यालीस नामकर्म के भेद हैं।।11।।

नाम कर्म

	14 पिण्ड प्रकृति	8 प्रत्येक प्रकृति	10 जोड़े	कुल
अभेद विवक्षा	14	8	20	**42**
भेद विवक्षा	65	8	20	**93**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

14 पिण्ड प्रकृति

नाम	गति	जाति	शरीर	अंगोपांग	बंधन	संघात	संस्थान	संहनन	स्पर्श	रस	गंध	वर्ण	आनुपूर्वी	विहायो गति
स्वरूप	जीव भवांतर में जाता है	समानता से इकट्ठे किए जाते हैं	शरीर की रचना हो	हाथ-पैर आदि अंग व नाकादि उपांग की रचना हो	शरीर के परमाणु छिद्र सहित इकट्ठे बँधें	शरीर के परमाणु छिद्र रहित एकता को प्राप्त हो	शरीर की आकृति बने	हड्डियों के बंधन में विशेषता हो	शरीर में स्पर्श हो	रस हो	गंध हो	वर्ण हो	विग्रह गति में पूर्व शरीर का आकार बना रहे	आकाश (द्रव्य) में गमन हो
भेद	4	5	5	3	5	5	6	6	8	5	2	5	4	2
भेदों के नाम	नरक तिर्यंच मनुष्य देव	एकेन्द्रिय द्वीन्द्रिय त्रीन्द्रिय चौइन्द्रिय पंचेन्द्रिय	औदारिक वैक्रियिक आहारक तैजस कार्मण	औदारिक वैक्रियिक आहारक	5 शरीर वाले भेद	5 शरीर वाले भेद	आगे देखें	आगे देखें					नरकगति तिर्यंचगति मनुष्यगति देवगति	प्रशस्त अप्रशस्त
विशेष				एकेन्द्रिय के नहीं होते				एकेन्द्रिय, देव, नारकी के नहीं होता						

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शरीर, बंधन, संघात में अन्तर

दृष्टांत-जैसे दीवार बनाने के लिए

शरीर	बंधन	संघात
ईंट जमाना	ईंट को गारे से जोड़ना	सीमेंट से मजबूत करना

संस्थान

समचतुस्र	न्यग्रोध परिमण्डल	स्वाति	कुब्जक	वामन	हुण्डक
शरीर ऊपर नीचे व मध्य में सम भाग हो	वट वृक्षवत् नाभि के नीचे के अंग छोटे एवं ऊपर के बड़े हों	सर्प की बाँबीवत् ऊपर के अंग छोटे एवं नीचे के बड़े हों	कुबड़ा शरीर हो	बौना शरीर हो	अनेक विरूप अवक्तव्य आकार हों

संहनन

वज्रवृषभ नाराच	व्रजनाराच	नाराच	अर्द्धनाराच	कीलक	असंप्राप्ता सृपाटिका
वज्र के हाड़ बेठन व कीलियाँ हो	वज्र के हाड़ व कीली हो	वज्र रहित कीलित हड्डियों की सन्धि हो	हड्डियों की सन्धि अर्द्ध -कीलित हो	हड्डियाँ परस्पर कीलित हो	जुदे-2 हाड़ नसों से बँधे हों

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किस संहनन सहित मरा जीव कहाँ जन्म ले सकता है

संहनन	स्वर्ग में	नरक में	श्रेणी चढ़े तो
6 संहनन	आठवें (8)स्वर्ग तक	पहले तीन (3)	
प्रथम 5	बारहवें (12)स्वर्ग तक	पाँचवे (5) तक	
प्रथम 4	सोलहवें (16)स्वर्ग तक	छठे (6) तक	
प्रथम 3	नवमें ग्रैवेयक तक	"	उपशम श्रेणी
प्रथम 2	नवमें अनुदिश तक	"	"
केवल प्रथम	पांचवे अनुत्तर तक	सातवें (7) तक	क्षपक श्रेणी

किस जीव के कौन-सा संहनन होता है

जीव	संहनन
* दो से चार इन्द्रिय	अंतिम संहनन
* भोगभूमि मनुष्य-तिर्यंच	प्रथम संहनन
* कर्मभूमि द्रव्य स्त्रियाँ	अंतिम तीन
* कर्मभूमि मनुष्य व तिर्यंच	6 संहनन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

8 प्रत्येक प्रकृति

[illegible]	निर्माण	अगुरुलघु	उपघात	परघात	आतप	उद्योत	उच्छ्वास	तीर्थंकर
स्वरूप	अंगोपांग की यथास्थान यथाप्रमाण रचना हो	शरीर भारी व हल्का न हो	अपना ही घात करने वाले अंग हो	दूसरे का घात करने वाले अंगोपांग हो	शरीर की आभा उष्ण हो	शरीर की आभा शीत हो	श्वासो-च्छ्वास हो	अर्हन्त पद के साथ धर्मतीर्थ प्रवर्तन हो
उदय किन्हें होता है	सभी को	सभी को	सभी को विग्रहगति के बाद	सभी त्रस को शरीर पर्याप्ति के बाद	पर्याप्त बादर पृथ्वी को (किन्हीं-2को)	पर्याप्त तिर्यंचों को	श्वासो-च्छ्वास पर्याप्ति पूरी होने पर	केवली को

आतप, उद्योत, उष्ण नामकर्म

	आतप	उद्योत	उष्ण
आभा	गर्म	ठंडा	गर्म
मूल (शरीर)	ठंडा	ठंडा	गर्म
जैसे	सूर्य का विमान	चन्द्रमा का विमान	अग्निकायिक का शरीर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

10 जोड़े

प्रशस्त		अप्रशस्त	
प्रत्येक शरीर	एक शरीर, एक स्वामी	साधारण शरीर	एक शरीर, अनेक स्वामी (इनका उदय निगोदिया जीव को ही होता है)
त्रस	द्वीन्द्रियादि में जन्म हो	स्थावर	एकेन्द्रियों में उत्पत्ति हो
सुभग	दूसरे जीव अपने से प्रीति करें	दुर्भग	दूसरे जीव अपने से प्रीति न करें
सुस्वर	अच्छा स्वर हो	दुस्वर	अच्छा स्वर न हो
शुभ	शरीर के अवयव सुन्दर हों	अशुभ	शरीर के अवयव सुन्दर न हों
बादर	दूसरों को रोके व दूसरों के द्वारा रुके, ऐसा शरीर हो	सूक्ष्म	न किसी को रोके, न रुके ऐसा शरीर हो
पर्याप्त	अपने-2 योग्य पर्याप्तियाँ पूर्ण हों	अपर्याप्त	एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो
स्थिर	शरीर की धातु-उपधातु अपने ठिकाने रहे	अस्थिर	शरीर की धातु-उपधातु अपने ठिकाने न रहे
आदेय	प्रभा सहित शरीर उपजे	अनादेय	प्रभा रहित शरीर उपजे
यशः-कीर्ति	संसार में यश हो रहा है ऐसा जीव के द्वारा माना जाना	अयशः-कीर्ति	अपयश हो रहा है, ऐसा जीव के द्वारा माना जाना

पर्याप्ति

(आहारादि वर्गणा के परमाणुओं को शरीरादि रूप परिणमाने की जीव की शक्ति की पूर्णता)

- आहार
- शरीर
- इन्द्रिय
- श्वासोच्छ्वास
- भाषा
- मनः

ये छः पर्याप्तियाँ एक साथ प्रारम्भ हो क्रम से पूर्ण होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अपर्याप्त

निर्वृत्ति	लब्धि
* पर्याप्त नामकर्म का उदय	* अपर्याप्त नाम कर्म का उदय
* शरीर पर्याप्ति जब तक पूर्ण न हो, पर नियम से पूर्ण होगी	* एक भी पर्याप्ति पूर्ण न हो और न होने वाली हो

उच्चैर्नीचैश्च ।।12।।

सूत्रार्थ - उच्चगोत्र और नीचगोत्र - ये दो गोत्रकर्म हैं।।12।।

गोत्र

उच्च	नीच
* लोक पूजित कुल में जन्म हो	* निन्दित कुल में जन्म हो

दानलाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ।।13।।

सूत्रार्थ -दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य - इनके पाँच अन्तराय हैं।।13।।

अंतराय

दानान्तराय	लाभान्तराय	भोगान्तराय	उपभोगान्तराय	वीर्यान्तराय
*देने की इच्छा करता हुआ भी नहीं देता	*प्राप्ति की इच्छा रखता हुआ भी नहीं प्राप्त करता	*भोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं भोग सकता	*उपभोगने की इच्छा करता हुआ भी नहीं उपभोग सकता	*शक्ति प्रकट करने की इच्छा हो, पर शक्ति प्रकट न हो

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आदितस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपमकोटीकोट्यः परा स्थितिः।।14।।

सूत्रार्थ - आदि की तीन प्रकृतियाँ अर्थात् ज्ञानावरण, दर्शनावरण और वेदनीय तथा अन्तराय इन चार की उत्कृष्ट स्थिति तीस कोटाकोटि सागरोपम है।।14।।

सप्ततिर्मोहनीयस्य।।15।।

सूत्रार्थ - मोहनीय की उत्कृष्ट स्थिति सत्तर कोटाकोटि सागरोपम है।।15।।

विंशतिर्नामगोत्रयोः।।16।।

सूत्रार्थ - नाम और गोत्र की उत्कृष्ट स्थिति बीस कोटाकोटि सागरोपम है।।16।।

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः।।17।।

सूत्रार्थ - आयु की उत्कृष्ट स्थिति तैंतीस सागरोपम है।।17।।

अपरा द्वादशमुहूर्ता वेदनीयस्य।।18।।

सूत्रार्थ - वेदनीय की जघन्य स्थिति बारह मुहूर्त है।।18।।

नामगोत्रयोरष्टौ।।19।।

सूत्रार्थ - नाम और गोत्र की जघन्य स्थिति आठ मुहूर्त है।।19।।

शेषाणामन्तर्मुहूर्ता।।20।।

पूत्रार्थ - बाकी के पाँच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त है।।20।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मूल कर्म जघन्य-उत्कृष्ट स्थिति बंध व आबाधा

कर्म	स्थिति बंध		आबाधा	
	उत्कृष्ट (सागर में)	जघन्य	उत्कृष्ट	जघन्य (उदीरणा अपेक्षा)
ज्ञानावरण	30 कोड़ाकोड़ी	अंतर्मुहूर्त	3000 वर्ष	
दर्शनावरण				
अंतराय				
मोहनीय	70 कोड़ाकोड़ी		7000 वर्ष	1 आवली
वेदनीय	30 कोड़ाकोड़ी	12मुहूर्त	3000 वर्ष	
नाम	20 कोड़ाकोड़ी	8मुहूर्त	2000 वर्ष	
गोत्र				
आयु	33 मात्र	अंतर्मुहूर्त	1कोटिपूर्व/3	आवली/ असंख्यात
स्वामी	*संज्ञी पंचेन्द्रिय पर्याप्त मिथ्यादृष्टि *उत्कृष्ट देवायु को सकल संयमी ही बाँध सकता है।	*आयु बिना शेष 7 क्षपक श्रेणी में *आयु मिथ्यादृष्टि मनुष्य व तिर्यंच		

1. आबाधा - जितने काल तक कर्म फल नहीं देता।
2. आवली = असंख्यात समय
3. एक श्वास में संख्यात हजार कोड़ाकोड़ी आवलियाँ होती हैं।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शेष जीवों का उत्कृष्ट कर्म स्थिति बंध

	मोहनीय	ज्ञानावरणादि 5	नाम गोत्र	आयु
एकेन्द्रिय	1 सागर	3/7 सागर	2/7 सागर	1 कोटी पूर्व
द्वीन्द्रिय	25 सागर	25X3/7 सागर	25X2/7 सागर	
त्रीन्द्रिय	50 सागर	50X3/7 सागर	50X2/7 सागर	
चौइन्द्रिय	100 सागर	100X3/7 सागर	100X2/7 सागर	
असैनी पंचेन्द्रिय	1000 सागर	1000X3/7 सागर	1000X2/7 सागर	पल्य/असंख्यात

उत्तर प्रकृति उत्कृष्ट स्थिति बंध

उत्तर प्रकृति	उत्कृष्ट स्थिति (कोड़ाकोड़ी सागर में)	उत्तर प्रकृति	उत्कृष्टस्थिति (कोड़ाकोड़ी सागर में)
ज्ञानावरण-5	30	**वेदनीय-**	
दर्शनावरण-9	30	-असाता	30
अंतराय-5	30	-साता	15
मोहनीय-		**आयु -**	
-दर्शन मोहनीय	70	देवायु,नरकायु	33 सागर मात्र
(मिथ्यात्व ही बँधती)		मनुष्यायु, तिर्यंचायु	3 पल्य
चारित्र मोहनीय			
1. 16 कषाय	40	**गोत्र -**	
2. अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, नपुसंक वेद	20	-नीच गोत्र	20
3. स्त्री वेद	15	-उच्च गोत्र	10
4. हास्य, रति, पुरुष वेद	10		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तर प्रकृति	उत्कृष्ट स्थिति (कोड़ाकोड़ी सागर में)
नाम- - संस्थान और संहनन - हुण्डक संस्थान, असंप्राप्तासृपाटिका संहनन - आगे-2 एक-2 संस्थान व संहनन की 2 कोड़ाकोड़ी सागर कम-2 होती जाती है	20
- आहारक शरीर, आहारक अंगोपांग, तीर्थंकर	अंतः
- देवगति व आनुपूर्वी, स्थिर, शुभ, सुभग, सुस्वर आदेय, यशःकीर्ति, प्रशस्त विहायोगति	10
- मनुष्य गति व आनुपूर्वी	15
- द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय व चौइन्द्रिय जाति, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण	18
- शेष 35 प्रकृतियाँ	20

विपाकोऽनुभवः ||21||

सूत्रार्थ - विपाक अर्थात् विविध प्रकार के फल देने की शक्ति का पड़ना ही अनुभव है||21||

स यथानाम||22||

सूत्रार्थ - वह जिस कर्म का जैसा नाम है, उसके अनुरूप होता है||22||

ततश्च निर्जरा||23||

सूत्रार्थ - इसके बाद निर्जरा होती है||23||

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनुभाग बंध

*अनुभाग क्या ?	अनुभव-विविध प्रकार की फल देने की शक्ति का पड़ना
* किस रूप	अपने अपने नाम रूप
*फल (उदय) देकर क्या होता है ?	निर्जरा (आत्मा से कर्मपने के संबंध का अभाव)

कैसे परिणामों से कैसा रस (अनुभाग)

* शुभ परिणाम ↑	पुण्य में अधिक ↑ पाप में कम ↓
* अशुभ परिणाम ↑	पुण्य में कम ↓ पाप में अधिक ↑

अनुभाग की प्रवृत्ति

स्वमुख	परमुख
* अपने स्वभाव रूप ही उदय में आना	* अन्य कर्म रूप हो उदय में आना * जैसे - असाता साता रूप उदय में आए

जिनका नियम से स्वमुख से उदय आता है

* मूल प्रकृतियाँ
* 4 आयु
* दर्शन और चारित्र मोहनीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

फल दान शक्ति की तारतम्यता

- **घातिया**
  - लता (बेल)
  - दारू (काष्ठ)
  - अस्थि (हड्डी)
  - शैल (पत्थर)
- **अघातिया**
  - पाप
    - निम्ब
    - काञ्जीर
    - विष
    - हलाहल
  - पुण्य
    - गुड़
    - खाण्ड
    - शर्करा (मिश्री)
    - अमृत

निर्जरा

- **सविपाक**
  - * कर्म का स्थिति पूर्ण होने पर फल देकर खिरना
- **अविपाक/सकाम**
  - * स्थिति बिना पूर्ण हुए तपादि द्वारा बीच में ही कर्मों को खिपा देना
- **अकाम**
  - * इच्छा बिना भूख-प्यासादि को मंद कषाय से सहना
  - * यहाँ पाप की निर्जरा व पुण्य का बंध होता है

नामप्रत्ययाः सर्वतो योगविशेषात्सूक्ष्मैकक्षेत्रावगाहस्थिताः सर्वात्मप्रदेशेष्वनन्तानन्तप्रदेशाः।।24।।

सूत्रार्थ - कर्म प्रकृतियों के कारणभूत प्रति समय योग विशेष से सूक्ष्म, एकक्षेत्रावगाही और स्थित अनन्तानन्त पुद्गल परमाणु सब आत्म-प्रदेशों में (सम्बन्ध को प्राप्त) होते हैं।।24।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रदेश बंध

* किस रूप?	ज्ञानावरणादि रूप
* कब	संसारी जीवों को सदा (सभी भवों में)
* किस कारण से	योग की न्यूनाधिकता से
* किसमें	सभी आत्मप्रदेशों में (दूध में पानीवत्)
* कैसे स्वभाव वाला	सूक्ष्म एक क्षेत्रावगाही (आत्मा के प्रदेशों पर ही स्थित)
* कितनी स्थिति वाले	1 समय से असंख्यात समय की
* कितना	अनंत परमाणु (जघन्यपने अभव्य राशि से अनंतगुणा व उत्कृष्टपने सिद्ध राशि का अनंतवाँ भाग)

सद्वेद्यशुभायुर्नामगोत्राणि पुण्यम्।।25।।

सूत्रार्थ - साता वेदनीय, शुभ आयु, शुभ नाम और शुभ गोत्र - ये प्रकृतियाँ पुण्यरूप हैं।।25।।

अतोऽन्यत्पापम्।।26।।

सूत्रार्थ - इनके सिवा शेष सब प्रकृतियाँ पापरूप हैं।।26।।

पुण्य-पाप प्रकृति विभाजन

	पुण्य	पाप	कुल
अनुभाग अपेक्षा	68	100	168
स्थिति अपेक्षा	3(3 आयु)	145	148

कुल कर्म प्रकृति- 148 + 20 = 168
(वर्णादि प्रशस्त व अप्रशस्त दोनों होते हैं)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुण्य प्रकृतियाँ (68)

- आयु(3)
  - *तिर्यंचायु
  - *मनुष्यायु
  - *देवायु
- नाम(63)
  - शरीर संबंधी (20)
    - शरीर(5)
    - बंधन(5)
    - संघात(5)
    - अंगोपांग(3)
    - संस्थान(1)
    - संहनन(1)
  - वर्णादि (20)
    - स्पर्श(8)
    - रस(5)
    - गंध(2)
    - वर्ण(5)
  - जोड़े की प्रशस्त प्रकृतियाँ (10)
  - प्रत्येक प्रकृति(7)
    - ↓ उपघात के अलावा शेष
  - पिण्ड प्रकृति(6)
    - गति(2)
    - जाति(1)
    - आनुपूर्वी(2)
    - विहायोगति(1)
- गोत्र(1)
  - *उच्च
- वेदनीय(1)
  - *साता

पाप प्रकृतियाँ (100)

- घातिया(47)
- आयु(1)
  - *नरकायु
- गोत्र(1)
  - *नीच
- वेदनीय(1)
  - *असाता

(घातिया, आयु, गोत्र, वेदनीय = 50)

- नाम(50)
  - शरीर संबंधी (10)
    - संस्थान(5)
    - संहनन(5)
  - वर्णादि (20)
  - जोड़े की अप्रशस्त प्रकृतियाँ (10)
  - प्रत्येक प्रकृति (1)
    - *उपघात
  - पिण्ड प्रकृति (9)
    - गति(2)
    - जाति(4)
    - आनुपूर्वी(2)
    - विहायोगति(1)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

घातिया कर्म

- **सर्वघाति (21)** (जो अनुजीवी गुणों को पूरे तौर से घाते)
  - **ज्ञानावरण(1)**
    - * केवलज्ञानावरण
  - **दर्शनावरण(6)**
    - * केवलदर्शनावरण
    - * 5 निद्राएँ
  - **मोहनीय(14)**
    - * मिथ्यात्व
    - * मिश्र
    - * 12 कषाय
- **देशघाति (26)** (जो अनुजीवी गुणों को एकदेश घाते)
  - **ज्ञानावरण(4)**
    - * केवलज्ञानावरण के अलावा शेष चार
  - **दर्शनावरण(3)**
    - * चक्षुदर्शनावरण
    - * अचक्षुदर्शनावरण
    - * अवधिदर्शनावरण
  - **मोहनीय(14)**
    - * सम्यक्त्व प्रकृति
    - * 4 संज्वलन कषाय
    - * 9 नोकषाय
  - **अंतराय(5)**

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नवम अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
संवर का लक्षण व कारण	1-2	2	184,186-188
निर्जरा का कारण	3	1	187-188
संवर प्रकरण गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा	4-7	4	189-191
परीषहजय	8-17	10	192-195
चारित्र	18	1	195-196
निर्जरा प्रकरण बाह्य तप के नाम	19	1	197-198
आभ्यन्तर तप के नाम व भेद	20-21	2	199
प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग के भेद	22-26	5	200-202
ध्यान	27-44	18	202-208
-ध्याता, ध्यान, ध्यान का काल	27		202
- ध्यान के भेद व फल	28-29		203
- आर्त ध्यान	30-34		204-205
- रौद्र ध्यान	35		204-205
- धर्म्य ध्यान	36		206
- शुक्ल ध्यान	37-44		206-208
निर्जरा विशेषता	45	1	209
निर्ग्रन्थ के भेद व विशेषता	46-47	2	210-212
	कुल	47	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आस्रवनिरोधः संवरः||1||

सूत्रार्थ - आस्रव का निरोध संवर है||1||

संवर (आस्रव का रुकना)

- **द्रव्य** — कर्मों का आना रुकना
- **भाव** — संसार के निमित्तभूत परिणामों की निवृत्ति

संवर दूसरे गुणस्थान से प्रारम्भ होकर आगे-आगे बढ़ता जाता है। इसलिए यहाँ 'गुणस्थान' का स्वरूप दिया जा रहा है :-

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान

(मोह और योग के निमित्त से होने वाली जीव की अवस्था विशेष)

गुणस्थान का नाम	स्वरूप
1. मिथ्यादृष्टि	जिसके मिथ्यादर्शन पाया जाता है।
2. सासादन सम्यग्दृष्टि	सम्यक्त्व से च्युत होकर भी मिथ्यात्व को प्राप्त नहीं हुआ। दृष्टि अनुभय रूप है।
3. सम्यग्मिथ्यादृष्टि	जिसकी दृष्टि सम्यक्त्व व मिथ्यात्व उभयरूप है।
4. अविरत सम्यग्दृष्टि	सम्यग्दृष्टि होकर जो अविरति है।
5. देशविरत (व्रती श्रावक)	स्थावर हिंसा से विरत न होकर भी त्रस हिंसा से विरत है।
6. प्रमत्तसंयत(मुनि)	प्रमाद सहित संयमभाव पाया जाता है।
7. अप्रमत्तसंयत	प्रमाद रहित संयमभाव पाया जाता है।
8. अपूर्वकरण	जहाँ पहले नहीं प्राप्त हुए, ऐसे परिणाम (करण) प्राप्त होते हैं।
9. अनिवृत्तिकरण	जहाँ एक समय वालों के परिणामों में भेद नहीं होता है।
10. सूक्ष्म लोभ	जहाँ सिर्फ लोभ कषाय अत्यंत सूक्ष्म रह जाती है।
11. उपशांत मोह	जहाँ सम्पूर्ण मोह दब जाता है।
12. क्षीणमोह	जहाँ सम्पूर्ण मोह का क्षय हो जाता है।
13. सयोग केवली (अरहंत)	जहाँ केवलज्ञान के साथ योग पाया जाता है।
14. अयोग केवली	जहाँ केवलज्ञान के साथ योग का अभाव है।
गुणस्थानातीत (सिद्ध)	जहाँ द्रव्यकर्म, भावकर्म, नोकर्म तीनों का अभाव है।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

किन आस्रव के कारणों के अभाव में किन प्रकृतियों का संवर होता है ?

कारण	किस गुण-स्थान से संवर होता है	कितनी प्रकृतियाँ	कौन-सी प्रकृतियाँ
1.मिथ्यात्व	2	मोहनीय = 2 आयु = 1 नामकर्म =13 कुल =16	मिथ्यात्व, नपुंसक वेद नरकायु नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि 4 जाति, हुण्डक संस्थान, असम्प्राप्तासृपाटिका संहनन, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, आतप, अपर्याप्त
2.अविरति -अनंतानुबंधी सम्बन्धी	3	मोहनीय = 5 दर्शनावरण=3 आयु = 1 गोत्र = 1 नाम =15 कुल =25	अनंतानुबंधी 4 कषाय, स्त्रीवेद, 3 बड़ी निद्रा, तिर्यंचायु नीच गोत्र तिर्यंच गति, तिर्यंचगत्यानुपूर्वी, मध्य के 4 संस्थान एवं 4 संहनन दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय, अप्रशस्त विहायोगति, उद्योत
-अप्रत्या - ख्यानावरण संबंधी	5	मोहनीय = 4 आयु = 1 नाम = 5 कुल =10	अप्रत्याख्यानावरण 4 कषाय मनुष्यायु मनुष्य गति, मनुष्यगत्यानुपूर्वी, औदारिक शरीर एवं अंगोपांग, वज्रवृषभनाराच संहनन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

-प्रत्याख्याना वरण संबंधी	6	4	प्रत्याख्यानावरण 4 कषाय
3. प्रमाद	7 8	मोहनीय = 2 वेदनीय = 1 नाम = 3 कुल = 6 आयु = 1	अरति, शोक असाता वेदनीय अस्थिर, अशुभ, अयशःकीर्ति देवायु (प्रमाद के नजदीक का अप्रमाद भी बंध का कारण है)
4. कषाय (प्रमाद रहित) -तीव्र	9	मोहनीय = 4 दर्शनावरण=2 नाम =30 कुल = 36	हास्य, रति, भय, जुगुप्सा निद्रा, प्रचला पंचेन्द्रिय जाति, 4 शरीर, 2 अंगोपांग, समचतुरस्र संस्थान, वर्णादि 4, जोड़ें की 9 प्रशस्त प्रकृति, 6 प्रत्येक प्रकृति, प्रशस्त विहायोगति
-मध्यम	10	मोहनीय = 5	संज्वलन 4 कषाय, पुरुषवेद
-जघन्य	11	16	ज्ञानावरण 5, अंतराय 5, दर्शनावरण 4, उच्च गोत्र, यशःकीर्ति
5. योग	14	1	साता वेदनीय

स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षापरीषहजयचारित्रैः।।2।।

सूत्रार्थ - वह संवर गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषहजय और चारित्र से होता है।।2।।

तपसा निर्जरा च।।3।।

सूत्रार्थ - तप से निर्जरा होती है और संवर भी होता है।।3।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवर के कारण

निश्चय से — निजात्मा में लीनता रूप वीतराग भाव

व्यवहार से

	गुप्ति	समिति	धर्म	अनुप्रेक्षा	परीषहजय	चारित्र	तप
स्वरूप	निवृत्ति (संसार के कारणों से आत्मा की रक्षा करना	यत्नाचार रूप प्रवृत्ति	उत्तम स्थान में धरे	शरीरादिक के स्वभाव का बार-बार चिंतन	क्षुधादि वेदना को संक्लेशता रहित सहना	संसार परिभ्रमण की कारण रूप क्रिया का अभाव	इच्छाओं का रुकना
भेद	3	5	10	12	22	5	12

निर्जरा

द्रव्य — बँधे कर्मों का एकदेश खिरना (नाश होना)

भाव — जीव के परिणाम जिनसे कर्म खिरते हैं

निर्जरा का कारण

तप

शुद्ध आत्मस्वरूप में प्रतपन अर्थात् विजय करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संवर प्रकरण

सम्यग्योगनिग्रहो गुप्तिः ||4||

सूत्रार्थ - योगों का सम्यक् प्रकार से निग्रह करना गुप्ति है||4||

गुप्ति

(स्वच्छन्द प्रवृत्ति का बंद होना)

- **काय** — * शारीरिक क्रिया का नियमन
- **वचन** — * मौन धारण
- **मन** — * संकल्प-विकल्प से जीवन की रक्षा

ईर्याभाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः ||5||

सूत्रार्थ - ईर्या, भाषा, एषणा, आदाननिक्षेप और उत्सर्ग - ये पाँच समितियाँ हैं||5||

समिति

- **ईर्या** — 4 हाथ आगे की जमीन देखकर चलना
- **भाषा** — हित-मित प्रिय वचन बोलना
- **एषणा** — दिन में 1 बार निर्दोष आहार लेना
- **आदान-निक्षेपण** — उपकरणों को देख-भाल कर लेना व रखना
- **उत्सर्ग** — जन्तुरहित स्थान पर मल-मूत्र आदि का त्याग करना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः।।6।।

सूत्रार्थ - उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम शौच, उत्तम सत्य, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य - यह दस प्रकार का धर्म है।।6।।

धर्म

नाम	स्वरूप
1. उत्तम क्षमा	क्रोध का अभाव
2. उत्तम मार्दव	मान का अभाव
3. उत्तम आर्जव	माया का अभाव
4. उत्तम शौच	लोभ का अभाव
5. उत्तम सत्य	सज्जन पुरुषों के साथ साधु वचन बोलना
6. उत्तम संयम	प्राणियों की हिंसा व इन्द्रिय विषयों का परिहार
7. उत्तम तप	कर्मक्षय के लिए जो तपा जाता है
8. उत्तम त्याग	संयत के योग्य ज्ञानादि का दान
9. उत्तम आकिंचन्य	शरीरादि में ममकार का त्याग
10. उत्तम ब्रह्मचर्य	मन, वचन, काय से समस्त स्त्रियों का त्याग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अनित्याशरणसंसारैकत्वान्यत्वाशुच्यास्रवसंवरनिर्जरालोकबोधिदुर्लभधर्म स्वाख्यातत्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः।।7।।

सूत्रार्थ - अनित्य, अशरण, संसार, एकत्व, अन्यत्व, अशुचि, आस्रव, संवर, निर्जरा, लोक, बोधिदुर्लभ और धर्मस्वाख्यातत्व का बार-बार चिन्तन करना अनुप्रेक्षाएँ हैं।।7।।

अनुप्रेक्षा (भावना) - *बारम्बार चिंतन करना*

वैराग्य प्रेरक 6 भावनाएँ

नाम	संयोगों संबन्धी चिंतन	आत्मा संबन्धी चिन्तन
1. अनित्य	क्षणभंगुरता	नित्यता-स्थायीपना
2. अशरण	अशरणता	शरणभूतत्व
3. संसार	निरर्थकता	सार्थकता
4. एकत्व	निःसंगता	संगता
5. अन्यत्व	पृथक्ता	एकता
6. अशुचि	अपवित्रता	पवित्रता

तत्त्व प्रधान 6 भावनाएँ

नाम	किनका चिंतन?
7. आस्रव	विकारी संयोगी भावों का
8. संवर	संवर के गुणों का
9. निर्जरा	निर्जरा के गुणों का
10. लोक	लोक के स्वभाव का
11. बोधिदुर्लभ	रत्नत्रय की दुर्लभता का
12. धर्म	मोक्ष प्राप्ति के उपाय का

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मार्गाच्यवननिर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः ।।8।।

सूत्रार्थ - मार्ग से च्युत न होने के लिए और कर्मों की निर्जरा करने के लिए जो सहन करने योग्य हों, वे परीषह हैं।।8।।

क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवध-याचनालाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाज्ञानादर्शनानि।।9।।

सूत्रार्थ - क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण, दंशमशक, नग्नता, अरति, स्त्री, चर्या, निषद्या, शय्या, आक्रोश, वध, याचना, अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल,सत्कार पुरस्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और अदर्शन - इन नामवाले परीषह हैं।।9।।

परीषह क्यों सहना

मार्ग (रत्नत्रय-संवर) से च्युत न हो

निर्जरा के लिए

22 परीषह

परीषह	स्वरूप	परीषह	स्वरूप
1. क्षुधा	भूख	12. आक्रोश	कठोर वचन
2. तृषा	प्यास	13. वध	मारना
3. शीत	ठण्ड	14. याचना	माँगना
4. उष्ण	गर्मी	15. अलाभ	आहारादि की अप्राप्ति
5. दंशमशक	मच्छरादि का काटना (चेतन)	16. रोग	व्याधियाँ
6. नग्नता	बालकवत् जन्मजात रूप	17. तृणस्पर्श	काँटे, कंकर आदि का स्पर्श (अचेतन)
7. अरति	अच्छा न लगना	18. मल	शरीर पर एकत्रित मल
8. स्त्री	सभी प्रकार की स्त्री	19. सत्कार -पुरस्कार	पूजा-प्रशंसा
9. चर्या	गमन	20. प्रज्ञा	पाण्डित्य का गर्व
10. निषद्या	बैठना	21. अज्ञान	ज्ञान का कम होना
11. शय्या	सोना	22. अदर्शन	मुनि मार्ग से आस्था चलित होना

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयोश्चतुर्दश।।10।।

सूत्रार्थ - सूक्ष्मसाम्पराय और छद्मस्थवीतराग के चौदह परीषह सम्भव हैं।।10।।

एकादश जिने।।11।।

सूत्रार्थ - जिन में ग्यारह परीषह सम्भव हैं।।11।।

बादरसांपराये सर्वे।।12।।

सूत्रार्थ - बादरसाम्पराय में सब परीषह सम्भव हैं।।12।।

कहाँ कौन-सा परीषह सम्भव है

कहाँ	गुणस्थान क्रमांक	कौन-सा परीषह	कुल कितने	संबंधित कर्म
बादर कषाय	छठे से नवाँ	सब	22	सभी 4
सूक्ष्म कषाय व वीतराग छद्मस्थ	दसवाँ व ग्यारवें-बारहवें	क्षुधा, तृषा, शीत, उष्ण दंशमशक, चर्या, शय्या वध, अलाभ, रोग, तृण-स्पर्श, मल, प्रज्ञा, अज्ञान	14	ज्ञानावरण-2 अंतराय-1 वेदनीय-11
केवली जिन	तेरहवें	ऊपर की 14 में से प्रज्ञा अज्ञान, अलाभ नहीं	11	वेदनीय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने ||13||

सूत्रार्थ - ज्ञानावरण के सद्भाव में प्रज्ञा और अज्ञान परीषह होते हैं||13||

दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ ||14||

सूत्रार्थ - दर्शनमोह और अन्तराय के सद्भाव में क्रम से अदर्शन और अलाभ परीषह होते हैं||14||

चारित्रमोहे नाग्न्यारतिस्त्रीनिषद्याक्रोशयाचनासत्कार-पुरस्काराः ||15||

सूत्रार्थ - चारित्रमोह के सद्भाव में नाग्न्य, अरति, स्त्री, निषद्या, आक्रोश, याचना और सत्कार-पुरस्कार परीषह होते हैं||15||

वेदनीये शेषाः ||16||

सूत्रार्थ - बाकी के सब परीषह वेदनीय के सद्भाव में होते हैं||16||

किस कर्म के उदय से कौन-सा परीषह होता है

ज्ञानावरण(2)	अंतराय(1)	दर्शन(1) मोहनीय	चारित्र (7) मोहनीय	वेदनीय(11)
* प्रज्ञा	* अलाभ	* अदर्शन	* नग्नता	* क्षुधा
* अज्ञान			* अरति	* तृषा
			* स्त्री	* शीत
			* निषद्या	* उष्ण
			* आक्रोश	* दंशमशक
			* याचना	* चर्या
			* सत्कार-पुरस्कार	* शय्या
				* वध
				* रोग
				* तृणस्पर्श
				* मल

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

एकादयो भाज्या युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः।।17।।

सूत्रार्थ - एक साथ एक आत्मा में एक से लेकर उन्नीस तक परीषह विकल्प से हो सकते हैं।।17।।

एक साथ एक जीव को कितने परीषह सम्भव हैं

1 से लेकर 19

19 कौन सी ⟶ *शीत *उष्ण | *शय्या *चर्या *निषद्या | *शेष 17

इनमें से 1-1

19 = 1 + 1 + 17

सामायिकच्छेदोपस्थापनापरिहारविशुद्धिसूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमितिचारित्रम्।।18।।

सूत्रार्थ - सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात - यह पाँच प्रकार का चारित्र है।।18।।

चारित्र

1. व्रतों का धारण
2. समितियों का पालन
3. कषायों का निग्रह
4. दण्डों का त्याग
5. इन्द्रियों की विजय

नाम	सामायिक	छेदोप-स्थापना	परिहार विशुद्धि	सूक्ष्म साम्पराय	यथाख्यात
स्वरूप	समस्त सावद्य (हिंसा सहित) योग का एक साथ त्याग	*दोषों को दूर कर पुनः व्रतों का ग्रहण करना *समस्त सावद्य योग का भेद रूप से त्याग	प्राणी हिंसा से पूर्ण निवृत्ति से प्राप्त विशुद्धि	जहाँ कषाय अति सूक्ष्म हो	मोहनीय के सम्पूर्ण क्षय अथवा उपशम से- आत्मा का जैसा स्वभाव है, वैसा होना
गुण-स्थान	6-9	6-9	6-7	10	11-14

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिहार विशुद्धि चारित्र

निम्न सभी विशेषताओं से युक्त जीव के ही परिहार विशुद्धि चारित्र हो सकता है:-
* 30 वर्ष तक सुखी रहने के बाद * दीक्षा लेकर * 8 वर्ष तीर्थंकर के पाद मूल में रहकर * नवमें प्रत्याख्यान नामक पूर्व का अध्ययन करने वाला जीव।
इस चारित्र के धारक जीव **नियम से** * 2 कोस प्रतिदिन विहार करते हैं। **परंतु** * 3 संध्या काल में विहार नहीं करते * वर्षा काल में विहार का निषेध नहीं है।

सामायिकों में अन्तर

सामायिक	गुणस्थान	स्वरूप
1. सामायिक शिक्षा व्रत	दूसरी प्रतिमा, पंचम गुणस्थान	अभ्यास रूप
2. सामायिक प्रतिमा	तीसरी प्रतिमा, पंचम गुणस्थान	व्रतरूप
3. सामायिक आवश्यक	छठा-सातवाँ गुणस्थान	नियमरूप
4. सामायिक चारित्र	छठे से नौवाँ गुणस्थान	यमरूप

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

निर्जरा प्रकरण

अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासन-कायक्लेशा बाह्यं तपः।।19।।

सूत्रार्थ - अनशन, अवमौदर्य, वृत्तिपरिसंख्यान, रसपरित्याग, विविक्तशय्यासन और कायक्लेश - यह छह प्रकार का बाह्य तप है।।19।।

तप

- **निश्चय तप**
  - शुद्धात्म स्वरूपमें प्रतपन
- **व्यवहार तप**
  - **बाह्य तप**
  - **आभ्यंतर तप**

बाह्य तप	**आभ्यंतर तप**
* बाह्य द्रव्य के अवलम्बन से होते हैं	* बाह्य द्रव्य की अपेक्षा नहीं रहती है
* दूसरों को दिखते हैं	* मानसिक क्रिया की प्रधानता रहती है
* बाह्य तप आभ्यंतर तप की पुष्टि के लिए हैं	* आभ्यंतर तप वीतरागता की वृद्धि के लिए हैं

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

बाह्य तप

नाम	अनशन	अवमौदर्य /ऊनोदर	वृत्तिपरि-संख्यान	रस परित्याग	विविक्त शय्यासन	कायक्लेश
स्व-रूप	4 प्रकार के आहार, विषय व कषाय का त्याग	दिन में एक बार भूख से कम आहार करना	अनेक प्रकार की अटपटी प्रतिज्ञाओं की पूर्ति पर भोजन करना	1,2 आदि 6 रसों तक का त्याग करना	एकांत स्थान में सोना-बैठना	अनेक प्रकार के काय के कष्ट रूप तप करना
क्यों किया जाता है ?	-संयम की सिद्धि -राग का नाश -ध्यान, आगम की प्राप्ति के लिये	-संयम की जागृति -संतोष एवं स्वाध्याय की सिद्धि के लिए	-आशा की निवृत्ति -परम संतोष की सिद्धि के लिए	-इन्द्रियों पर विजय -निद्रा पर विजय -स्वाध्याय की सिद्धि के लिए	-बाधा रहित ब्रह्मचर्य, स्वाध्याय, ध्यान की प्रसिद्धि के लिए	-सुख विषयक आसक्ति कम करने के लिये -प्रवचन प्रभावना के लिए

4 प्रकार का आहार

- **खाद्य** — रोटी आदि
- **पेय** — पानी आदि
- **लेह्य** — चटनी आदि
- **स्वाद्य** — सौंफ-इलायची आदि

6 प्रकार के रस

- घी
- दूध
- तेल
- खांड, गुड़ आदि
- नमक
- दही.

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रायश्चित्तविनयवैयावृत्त्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम्।।20।।

सूत्रार्थ - प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्त्य, स्वाध्याय, व्युत्सर्ग और ध्यान - यह छह प्रकार का आभ्यन्तर तप है।।20।

नवचतुर्दशपञ्चद्विभेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्।।21।।

सूत्रार्थ - ध्यान से पूर्व के आभ्यन्तर तपों के अनुक्रम से नौ, चार, दश, पाँच और दो भेद हैं।।21।।

आभ्यंतर तप

नाम	प्रायश्चित्त	विनय	वैयावृत्त्य	स्वाध्याय	व्युत्सर्ग	ध्यान
स्वरूप	प्रमाद से लगे दोषों को दूर करना	-ज्ञानादि का बहुमान -पूज्य पुरुषों का आदर	अन्य मुनियों की संयम साधना के निमित्त सेवा करना	ज्ञान की आराधना करना	अहंकार-ममकार का त्याग	चित्त की चंचलता का त्याग
भेद	9	4	10	5	2	4
लाभ	-दोषों का शोधन -मर्यादा में रहना -भावों में उज्ज्वलता	-ज्ञान की प्राप्ति -आचार की विशुद्धता -सम्यक् आराधना की सिद्धि	-समाधि की प्राप्ति -ग्लानि का अभाव -प्रवचन में वात्सल्य	- बुद्धि में अतिशय प्रकट होना -संशय दूर होना -अतिचारों में विशुद्धि -संसारादि से विरक्तता	-निःसंगता -निर्भयता -जीवित रहने की आशा का अभाव	कर्मों का क्षय

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आलोचनप्रतिक्रमणतदुभयविवेकव्युत्सर्गतपच्छेदपरिहारो-पस्थापनाः ||22||

सूत्रार्थ - आलोचना, प्रतिक्रमण, तदुभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, परिहार और उपस्थापना - यह नव प्रकार का प्रायश्चित्त है||22||

प्रायश्चित्त

प्रायश्चित्त	स्वरूप
1. आलोचना	गुरु के समक्ष अपने दोषों का निवेदन करना
2. प्रतिक्रमण	'मेरे दोष मिथ्या हों' ऐसे भावों को वचनों से प्रकट करना
3. तदुभय	आलोचना व प्रतिक्रमण दोनों साथ में करना
4. विवेक	सदोष अन्न, पात्र, उपकरणादि मिलने पर उनका त्याग
5. व्युत्सर्ग	नियमित काल के लिए कायोत्सर्ग करना
6. तप	अनशनादि
7. छेद	कुछ समय की दीक्षा का छेद करना
8. परिहार	कुछ समय के लिए संघ से दूर करना
9. उपस्थापन	पूर्ण दीक्षा छेद कर पुनः दीक्षा प्राप्त करना

ज्ञानदर्शनचारित्रोपचाराः ||23||

सूत्रार्थ - ज्ञानविनय, दर्शनविनय, चारित्रविनय और उपचारविनय - ये चार प्रकार की विनय हैं||23||

विनय

ज्ञान	दर्शन	चारित्र	उपचार
ज्ञान का ग्रहण अभ्यास, स्मरण	तत्त्वार्थ श्रद्धान	निर्दोष चारित्र का पालन	पूज्य पुरुषों के प्रति समुचित व्यवहार

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आचार्योपाध्यायतपस्विशैक्षग्लानगणकुलसंघसाधुमनोज्ञानाम्।।24।।

सूत्रार्थ - आचार्य, उपाध्याय, तपस्वी, शैक्ष, ग्लान, गण, कुल, संघ, साधु और मनोज्ञ - इनकी वैयावृत्त्य के भेद से वैयावृत्त्य दश प्रकार का है।।24।।

वैयावृत्त्य के विषय

(इन 10 प्रकार के मुनियों की सेवा)

आचार्य	उपाध्याय	तपस्वी	शैक्ष	ग्लान
व्रतों का आचरण करायें	श्रुत का अध्ययन करें-करायें	महान उपवासादि करें	शिक्षा शील	रोगी मुनि

गण	कुल	संघ	साधु	मनोज्ञ
वृद्ध मुनियों का समुदाय	दीक्षकाचार्य का शिष्य समुदाय	4 वर्ण के मुनियों का समूह	बहुत काल के दीक्षित	लोक सम्मत साधु

4 प्रकार का संघ

ऋषि	मुनि	यति	अनगार
ऋद्धि प्राप्त	अवधिज्ञानी मनःपर्ययज्ञानी	उपशम व क्षपक श्रेणी वाले	शेष सभी मुनि

ऋषि :

	राजर्षि	ब्रह्मर्षि	देवर्षि	परमर्षि
प्राप्त ऋद्धियों के नाम	* विक्रिया * अक्षीण महानस	* बुद्धि * सर्वौषधि आदि	चारण	केवलज्ञान

वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नायधर्मोपदेशाः ।।25।।

सूत्रार्थ - वाचना, पृच्छना, अनुप्रेक्षा, आम्नाय और धर्मोपदेश - यह पाँच प्रकार का स्वाध्याय है।।25।।

स्वाध्याय

वाचना	पृच्छना	अनुप्रेक्षा	आम्नाय	धर्मोपदेश
पढ़ना	पूछना	चिंतन	पुनः-पुनः दोहराना	उपदेश देना

बाह्याभ्यन्तरोपध्योः ।।26।।

सूत्रार्थ- बाह्य और अभ्यन्तर उपधि का त्याग -यह दो प्रकार का व्युत्सर्ग है।।26।।

व्युत्सर्ग

बाह्य	अभ्यन्तर
* आत्मा से भिन्न मकान, पुत्रादि का त्याग	* क्रोधादिरूप आत्मभाव का त्याग * शरीर के ममत्व का त्याग

उत्तमसंहननस्यैकाग्रचिन्तानिरोधो ध्यानमान्तर्मुहूर्तात् ।।27।।

सूत्रार्थ - उत्तम संहननवाले का एक विषय में चित्तवृत्ति का रोकना ध्यान है, जो अन्तर्मुहूर्त काल तक होता है।।27।।

ध्यान

(एक विषय में चित्त का रुकना)

* **ध्याता**	ध्यान करने वाला - उत्तम संहनन सहित (शुरू के तीन संहनन)
* **ध्येय**	जिसका ध्यान किया जाए - एक अग्र (प्रधान विषय)
* **ध्यान**	ज्ञान में व्यग्रता का अभाव
* **ध्यान का काल**	अंतर्मुहूर्त

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अंतर्मुहूर्त

- **जघन्य** — 1 आवलि 1 समय
- **उत्कृष्ट** — 48 मिनिट में 1 समय कम

इनके बीच में असंख्यात मध्यम भेद हैं।

आर्त्तरौद्रधर्म्यशुक्लानि।।28।।

सूत्रार्थ - आर्त, रौद्र, धर्म्य और शुक्ल - ये ध्यान के चार भेद हैं।।28।।

परे मोक्षहेतु।।29।।

सूत्रार्थ - उनमें से पर अर्थात् अन्त के दो ध्यान मोक्ष के हेतु हैं।।29।।

ध्यान

- **अप्रशस्त**
  - * पापास्रव का कारण
  - * दुर्ध्यान
    - **आर्त** — पीड़ा का चिन्तन
    - **रौद्र** — पाप में आनंद (क्रूर आशय)
    - (आर्त, रौद्र) संसार के कारण
- **प्रशस्त**
  - * कर्मों के नाश का कारण
  - * सुध्यान
    - **धर्म्य** — धर्म से युक्त परिणाम ↓ परम्परा
    - **शुक्ल** — शुद्ध परिणाम ↓ साक्षात्
    - (परम्परा, साक्षात्) मोक्ष के कारण

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृतिसमन्वाहारः।।30।।

सूत्रार्थ - अमनोज्ञ पदार्थ के प्राप्त होने पर उसके वियोग के लिए चिन्तासातत्य (सतत चिन्ता) का होना प्रथम आर्तध्यान है।।30।।

विपरीतं मनोज्ञस्य।।31।।

सूत्रार्थ - मनोज्ञ वस्तु के वियोग होने पर उसकी प्राप्ति की सतत चिन्ता करना दूसरा आर्तध्यान है।।31।।

वेदनायाश्च।।32।।

सूत्रार्थ - वेदना के होने पर उसे दूर करने के लिए सतत चिन्ता करना तीसरा आर्तध्यान है।।32।।

निदानं च।।33।।

सूत्रार्थ - निदान नाम का चौथा आर्तध्यान है।।33।।

तदविरतदेशविरतप्रमत्तसंयतानाम्।।34।।

सूत्रार्थ - यह आर्तध्यान अविरत, देशविरत और प्रमत्तसंयत जीवों के होता है।।34।।

हिंसानृतस्तेयविषयसंरक्षणेभ्यो रौद्रमविरतदेशविरतयोः।।35।।

सूत्रार्थ - हिंसा, असत्य, चोरी और विषय संरक्षण के लिए सतत चिन्तन करना रौद्रध्यान है। वह अविरत और देशविरत के होता है।।35।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आर्त - रौद्र ध्यान

नाम	आर्तध्यान	रौद्र ध्यान
स्वरूप	दु:ख चिंतन	पाप में आनंद
फल	तिर्यंच गति	नरक गति
गुणस्थान	1-6 (छठे में निदान नहीं)	1-5
भेद	निरंतर चिंता करना — **अनिष्ट संयोगज** * अप्रिय संयोग को दूर करने की — **इष्ट वियोगज** * प्रिय के वियोग में उसकी प्राप्ति की — **वेदना** * रोग दूर करने की — **निदान** * आगामी भोगों की प्राप्ति की	आनंद मानना — **हिंसानंदी** * हिंसा में — **मृषानंदी** * झूठ में — **चौर्यानंदी** * चोरी में — **परिग्रहानंदी/ विषयानंदी** * पाँच इन्द्रिय के भोगों में

निदान

	निदान शल्य	निदान आर्तध्यान
	* निरंतर सताती है	* कभी-कभी होता है
	* कषाय की तीव्रता	* कषाय कम-तीव्र
स्वामी-	* अव्रती	* अव्रती व देशव्रती

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यम्।।36।।

सूत्रार्थ - आज्ञा, अपाय, विपाक और संस्थान - इनकी विचारणा के निमित्त मन को एकाग्र करना धर्म्यध्यान है।।36।।

धर्म्य ध्यान

नाम	आज्ञाविचय	अपायविचय	विपाकविचय	संस्थानविचय
स्वरूप	जिनेन्द्रदेव की आज्ञा प्रमाण	ये प्राणी मिथ्यादर्शनादि से कैसे दूर होंगे, ऐसा	कर्म के फल का	लोक के आकार का
	← निरन्तर चिन्तन करना →			
गुणस्थान	← यथायोग्य 4 से 7 →			
मिथ्यादृष्टि के धर्म भावना होती है, धर्म्य ध्यान नहीं				

शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।।37।।

सूत्रार्थ - आदि के दो शुक्ल ध्यान पूर्वविद् के होते हैं।।37।।

परे केवलिनः।।38।।

सूत्रार्थ - शेष के दो शुक्लध्यान केवली के होते हैं।।38।।

पृथक्त्वैकत्ववितर्कसूक्ष्मक्रियाप्रतिपातिव्युपरतक्रियानिवर्तीनि।।39।।

सूत्रार्थ - पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरत-क्रियानिवर्ति - ये चार शुक्लध्यान हैं।।39।।

त्र्येकयोगकाययोगायोगानाम्।।40।।

सूत्रार्थ - वे चार ध्यान क्रम से तीन योग वाले, एक योग वाले, काय योग वाले और अयोग के होते हैं।।40।।

एकाश्रये सवितर्कवीचारे पूर्वे।।41।।

सूत्रार्थ - पहले के दो ध्यान एक आश्रय वाले, सवितर्क और सवीचार होते हैं।।41।।

अवीचारं द्वितीयम्।।42।।

- दूसरा ध्यान अवीचार है।।42।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

वितर्कः श्रुतम्।।43।।

सूत्रार्थ - वितर्क का अर्थ श्रुत है।।43।।

वीचारोऽर्थव्यंजनयोगसंक्रान्तिः।।44।।

सूत्रार्थ - अर्थ, व्यञ्जन और योग की संक्रान्ति वीचार है।।44।।

वितर्क = **श्रुत** = विशेष रूप से तर्कणा या विचार करना

वीचार = **संक्रान्ति** = परिवर्तन (पलटना)

किसका

अर्थ — द्रव्य और पर्याय

व्यञ्जन — वचन या शब्द

योग — मन, वचन या काय की क्रिया

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

शुक्लध्यान

नाम	पृथक्त्व वितर्क वीचार	एकत्व वितर्क अवीचार	सूक्ष्मक्रिया प्रतिपाती	व्युपरत क्रियानिवृत्ति
स्वरूप	**पृथक्त्व** = भिन्न-भिन्न में **वितर्क** = भावश्रुत ज्ञान के बल से **वीचार** = परिवर्तन सहित	**एकत्व** = एक में (द्रव्य या पर्याय) **वितर्क** = भावश्रुत ज्ञान के बल से **अवीचार** = परिवर्तन रहित	**सूक्ष्म क्रिया** = सूक्ष्म काय योग में स्थित **अप्रतिपाती** = जिससे गिरना न हो	**व्युपरत क्रिया** = समस्त योग से निवृत्ति **अनिवृत्ति** = संसार से अभी निवृत्ति नहीं
गुणस्थान	8-11	12	13 के अंत में	14
स्वामी	श्रुत केवली	श्रुत केवली	केवली	केवली
योग कौन सा	तीन योग	कोई एक योग	काय योग	योग नहीं
फल	मोहनीय का उपशम व क्षय	शेष 3 घातिया कर्मों का क्षय	योग का अभाव	4 अघातिया कर्मों का क्षय अर्थात् मोक्ष
संहनन	उत्तम 3 सहंनन	वज्रवृषभ नाराच	वज्रवृषभ नाराच	वज्रवृषभ नाराच
दृष्टांत	दीपक की लौ	मणि का प्रकाश	सूर्य का प्रकाश	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्यग्दृष्टिश्रावकविरतानन्तवियोजकदर्शनमोहक्षपकोपशमकोपशान्त-मोहक्षपकक्षीणमोहजिनाः क्रमशोऽसंख्येयगुणनिर्जराः ।।45।।

सूत्रार्थ - सम्यग्दृष्टि, श्रावक, विरत, अनन्तानुबन्धिवियोजक, दर्शनमोह क्षपक, उपशमक, उपशान्तमोह, क्षपक, क्षीणमोह और जिन - ये क्रम से असंख्यगुण निर्जरा वाले होते हैं।।45।।

गुणश्रेणी निर्जरा में विशेषता के 10 स्थान
(एक ही जीव की अपेक्षा)

स्थान	स्वरूप	स्वामी (गुणस्थान अपेक्षा)	निर्जरा
सातिशय मिथ्यादृष्टि	प्रथमोपशम सम्यक्त्व के पहले करण लब्धि में	1	आगे-2 के स्थान में असंख्यात गुणी निर्जरा होती है।
1. सम्यग्दृष्टि	अव्रती श्रावक	4	
2. श्रावक	व्रती श्रावक	5	
3. विरत	मुनि	7	
4. अनंतानुबंधी वियोजक	अनंतानुबंधी को अप्रत्याख्यानावरण आदि रूप विसंयोजित करने वाला	4-7	
5. दर्शनमोह क्षपक	दर्शनमोह का क्षय करनेवाला	4-7	सामान्य से सबका अंतर्मुहूर्त काल होने पर भी आगे-2 संख्यात गुणाहीन काल है।
6. उपशामक	चारित्र मोह दबाने वाला	उपशमश्रेणी 8-10	
7. उपशांत कषाय	चारित्र मोह दबने पर	11	
8. क्षपक	चारित्र मोह क्षय करने वाला	क्षपकश्रेणी 8-10	
9. क्षीण मोह	चारित्र मोह क्षय होने पर	12	
10. सयोगी जिन	घातिया कर्मों का क्षय करने के बाद योग सहित	13	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पुलाकबकुशकुशीलनिर्ग्रन्थस्नातका निर्ग्रन्थाः।।46।।

सूत्रार्थ - पुलाक, बकुश, कुशील, निर्ग्रन्थ और स्नातक ये पाँच निर्ग्रन्थ हैं।।46।।

संयमश्रुतप्रतिसेवनातीर्थलिंगलेश्योपपादस्थानविकल्पतः साध्याः।।47।।

सूत्रार्थ - संयम, श्रुत, प्रतिसेवना, तीर्थ, लिंग, लेश्या, उपपाद और स्थान के भेद से इन निर्ग्रन्थों का व्याख्यान करना चाहिए।।47।।

निर्ग्रन्थ

नाम	पुलाक	बकुश	कुशील		निर्ग्रंथ	स्नातक
			प्रतिसेवना	कषाय		
स्वरूप	-उत्तर गुणों की भावना से रहित -मूलगुणों में भी कदाचित् अपूर्णता	-व्रतों को अखण्ड पालते हैं -शरीर, उपकरण की शोभा बढ़ाने में लगते हैं	-मूल-उत्तर गुणों में परिपूर्ण -कभी-2 उत्तर गुणों की विराधना	-संज्वलन के अलावा शेष कषायों को जीत लिया है	-जिनका मोह नाश अथवा उपशमित हो गया है -केवल ज्ञान नहीं हुआ है	समस्त घातिया कर्मों का नाश कर दिया है
गुणस्थान	6-7	6-7	6-7	6-10	11-12	13-14
संयम	सामायिक, छेदो-पस्थापना	सामायिक, छेदो-पस्थापना	सामायिक छेदो-पस्थापना	यथाख्यात के सिवाय शेष 4	यथाख्यात	यथाख्यात
श्रुत -जघन्य	आचारांग में आचार वस्तु प्रमाण	8 प्रवचन मातृका (5 समिति, 3 गुप्ति)	8 (अष्ट) प्रवचन मातृका	8 प्रवचन मातृका	8 प्रवचन मातृका	श्रुतज्ञान से रहित केवली होते हैं
-उत्कृष्ट	10 पूर्व	10 पूर्व	10 पूर्व	14 पूर्व	14 पूर्व	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

नाम	पुलाक	बकुश	कुशील		निर्ग्रंथ	स्नातक
			प्रतिसेवना	कषाय		
प्रति-सेवना (विरा-धना)	दूसरों के दबाववश 5 व्रत व रात्रि भोजन त्याग व्रत में से 1 की विराधना	1. उपकरण बकुश- उपकरण की चाह 2. शरीर बकुश - शरीर संस्कार की चाह	उत्तर गुणों की विराधना	प्रतिसेवना का अभाव	प्रतिसेवना का अभाव	प्रतिसेवना का अभाव
तीर्थ	सभी निर्ग्रंथ सब तीर्थंकरों के तीर्थ में होते हैं।					
भावलिंग	* सभी भावलिंगी होते हैं।					
द्रव्यलिंग	* सभी यथाजात रूप वाले होते हैं। * शरीर की ऊँचाई आदि प्रवृत्ति में अंतर होता है।					
लेश्या (भाव)	3 शुभ	6	6	कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल	शुक्ल	शुक्ल/ लेश्या रहित
उत्कृष्ट उपपाद (जन्म)	12वें स्वर्ग -18 सागर आयु	15-16वें स्वर्ग 22 सागर	15-16वें स्वर्ग 22 सागर	सर्वार्थ- सिद्धि 33 सागर	सर्वार्थ- सिद्धि 33 सागर	मोक्ष ही जाते हैं
जघन्य उपपाद	सभी का पहले स्वर्ग - 2 सागर आयु					
संयम स्थान	कषाय सहित	कषाय सहित	कषाय सहित	कषाय सहित	कषाय रहित	कषाय रहित

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

संयम स्थान की तारतम्यता

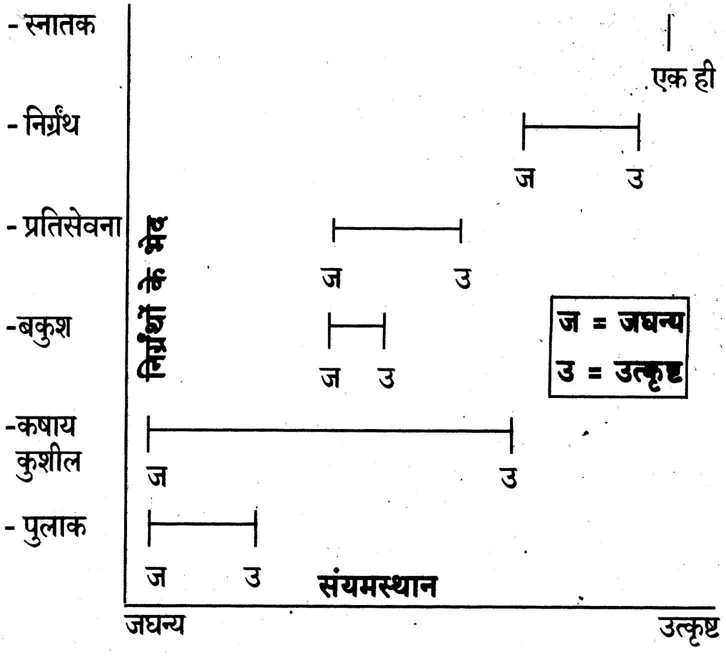

**** सभी के जघन्य से उत्कृष्ट तक असंख्यात संयमस्थान होते हैं।***

**** स्नातक अर्थात् केवली का एक ही संयमस्थान होता है।***

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

दसवाँ अध्याय

विषय-वस्तु	सूत्र क्रमांक	कुल सूत्र	पृष्ठ संख्या
मोक्ष के पहले केवलज्ञान की उत्पत्ति का कारण	1	1	214
मोक्ष होने का हेतु	2	1	214
मोक्ष होने पर- -किन भावों का अभाव व सद्भाव	3-4	2	217
- ऊर्ध्वगमन	5	1	218
- ऊर्ध्वगमन क्यों? हेतु व दृष्टांत	6-7	2	218
- लोकाग्र से आगे न जाने का कारण	8	1	218
मुक्त जीवों में - - भेद के कारण व अल्पबहुत्व	9	1	220-222
	कुल	9	

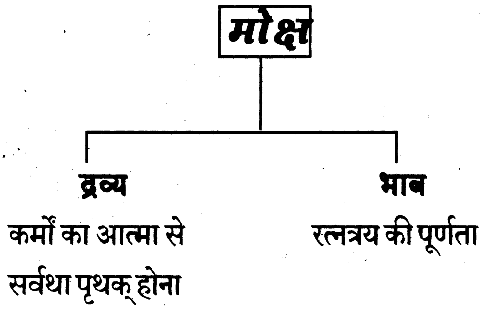

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोहक्षयाज्ज्ञानदर्शनावरणान्तरायक्षयाच्च केवलम्।।1।।

सूत्रार्थ - मोह का क्षय होने से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अन्तराय कर्म का क्षय होने से केवलज्ञान प्रकट होता है।।1।।

मोक्ष के पहले केवलज्ञान की उत्पत्ति

घातिया कर्म	क्षय किस गुणस्थान में
1. दर्शन मोहनीय	4 से 7 किसी एक में
2. चारित्र मोहनीय	10 के अंत में
3. ज्ञानावरण, दर्शनावरण, अंतराय	12 के अंत में

↓ फल

केवलज्ञान की उत्पत्ति 13वें गुणस्थान में

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः।।2।।

सूत्रार्थ - बन्ध-हेतुओं के अभाव और निर्जरा से सब कर्मों का आत्यन्तिक क्षय होना ही मोक्ष है।।2।।

मोक्ष होने के हेतु

- नवीन बंध के हेतुओं (मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय, योग) का अभाव
- पूर्व बँधे कर्मों की निर्जरा

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

कर्म का अभाव (क्षय)

यत्नसाध्य(145)

अयत्नसाध्य(3)

चरमदेह वाले के इनका सत्त्व ही नहीं

* नरकायु
* तिर्यंचायु
* देवायु

गुणस्थान	प्रकृति संख्या	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृतियाँ
4 से 7 किसी एक में	[7]	4 चारित्र मोहनीय 3 दर्शन मोहनीय	- अनंतानुबंधी 4 कषाय -मिथ्यात्व, मिश्र,सम्यक्त्व प्रकृति
9	16	3 दर्शनावरण 13 नाम कर्म	- 3 बड़ी निद्रा - नरक गति, नरक गत्यानुपूर्वी, तिर्यंच गति, तिर्यंच गत्यानुपूर्वी, एकेन्द्रियादि 4 जाति, सूक्ष्म, साधारण, स्थावर, आतप, उद्योत
	8	चारित्र मोहनीय	- अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण 8 कषाय
	1	"	- नपुंसक वेद
	1	"	- स्त्रीवेद
	6	"	- नो कषाय
	1	"	- पुरुष वेद
	1	"	- संज्वलन क्रोध
	1	"	- संज्वलन मान
	1	"	- संज्वलन माया
	[36]		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

गुणस्थान	प्रकृति संख्या	मूल प्रकृति	उत्तर प्रकृतियाँ
10	1	चारित्र मोहनीय	- संज्वलन लोभ
12	2	दर्शनावरण	- निद्रा, प्रचला
	14	5 ज्ञानावरण	- पाँचों
		5 अंतराय	- पाँचों
		4 दर्शनावरण	- निद्राओं के अलावा शेष 4
	16		
14	72	1 वेदनीय	- कोई भी एक
		1 गोत्र	- नीच गोत्र
		70 नामकर्म	- अन्य स्थानों में क्षय प्रकृतियों के अलावा शेष सभी
	13	1 वेदनीय	- कोई भी एक
		1 गोत्र	- उच्च गोत्र
		1 आयु	- मनुष्यायु
		10 नाम कर्म	- मनुष्य गति-मनुष्य गत्यानुपूर्वी पंचेन्द्रिय जाति, त्रस, बादर, पर्याप्त, सुभग, आदेय, यशःकीर्ति, तीर्थंकर
	85		
कुल	145		

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

औपशमिकादिभव्यत्वानां च।।3।।

सूत्रार्थ - तथा औपशमिक आदि भावों और भव्यत्व भाव के अभाव होने से मोक्ष होता है।।3।।

अन्यत्र केवलसम्यक्त्वज्ञानदर्शनसिद्धत्वेभ्यः।।4।।

सूत्रार्थ - पर केवल सम्यक्त्व, केवलज्ञान, केवलदर्शन और सिद्धत्व भाव का अभाव नहीं होता।।4।।

मोक्ष होने पर किन भावों का

अभाव होता है		सद्भाव रहता है	
भाव	**क्यों?**	**भाव**	**क्यों?**
*औपशमिक *क्षायोपशमिक *औदयिक	कर्म के निमित्त से होते थे	*क्षायिक भाव - क्षायिक सम्यक्त्व - " ज्ञान - " दर्शन - " वीर्य	प्रतिपक्षी कर्म का अभाव होने से
*पारिणामिक - भव्यत्व - अभव्यत्व	 रत्नत्रय की पूर्णता हो गई मोक्षगामी के पहले ही नहीं था	* पारिणामिक - जीवत्व	कर्म निरपेक्ष-स्वभाव

3 प्रकार के कर्मों के नाश होने पर मोक्ष

नाम	**भावकर्म**	**द्रव्य कर्म**	**नोकर्म**
स्वरूप	जीव के विकार	पौद्‌गलिक कर्म	शरीर
नाश कैसे [redacted] ?	जीव के पुरुषार्थ से	भाव कर्म के नाश से	द्रव्यकर्म के नाश से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्यालोकान्तात्।।5।।

सूत्रार्थ - तदनन्तर मुक्त जीव लोक के अन्त तक ऊपर जाता है।।5।।

पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथागतिपरिणामाच्च।।6।।

सूत्रार्थ - पूर्वप्रयोग से, संग का अभाव होने से, बन्धन के टूटने से और वैसा गमन करना स्वभाव होने से मुक्त जीव ऊर्ध्वगमन करता है।।6।।

आविद्धकुलालचक्रवद्व्यपगतलेपालाबुवदेरण्डबीजवदग्निशिखावच्च।।7।।

सूत्रार्थ - घुमाये हुए कुम्हार के चक्र के समान, लेप से मुक्त हुई तूमड़ी के समान, एरण्ड के बीज के समान और अग्नि की शिखा के समान।।7।।

धर्मास्तिकायाभावात्।।8।।

सूत्रार्थ- धर्मास्तिकाय का अभाव होने से मुक्त जीव लोकान्त से और ऊपर नहीं जाता।।8।।

मोक्ष होने के बाद आत्मा

↓

लोक के अंत तक ऊपर जाता है

↓ क्यों

	हेतु	दृष्टांत
1.	पूर्व प्रयोग	घुमाया हुआ कुम्हार का चक्र
2.	संग का अभाव	लेप से मुक्त हुई तूमड़ी
3.	बंधन का टूटना	बीजकोश के बंधन से टूटा एरण्ड बीज
4.	ऊर्ध्व गमन स्वभाव	अग्नि की शिखा

लोकाग्र के आगे गमन क्यों नहीं होता?

↓

धर्मास्तिकाय का अभाव होने से

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

मोक्ष होने पर सिद्धों (मुक्त जीवों) का निवास

अष्टम पृथिवी - ईषत् प्राग्भार

- कहाँ है ↓ सर्वार्थसिद्धि की ध्वजा से 12 योजन ऊपर
- मोटाई ↓ 8 योजन
- लम्बाई ↓ 7 राजू
- चौड़ाई ↓ 1 राजू

सिद्ध शिला

- कहाँ है ↓ अष्टम पृथिवी के मध्य में
- आकार ↓ आधे कटे नींबू के समान गोलाकार
- व्यास ↓ 45 लाख योजन
- मोटाई ↓ - मध्य में 8 योजन - क्रम से घट कर 1 अंगुल

सिद्धों का निवास - सिद्ध क्षेत्र

↓

लोकाग्र में

(सिद्ध शिला से ठीक ऊपर तनुवात वलय के अन्त में)

क्षेत्रकालगतिलिङ्गतीर्थचारित्रप्रत्येकबुद्धबोधितज्ञानावगाहना-न्तरसंख्याल्पबहुत्वतः साध्याः ।।9।।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सूत्रार्थ - क्षेत्र, काल, गति, लिंग, तीर्थ, चारित्र, प्रत्येकबुद्ध, बोधितबुद्ध, ज्ञान, अवगाहना, अन्तर, संख्या और अल्पबहुत्व - इन द्वारा सिद्ध जीव विभाग करने योग्य हैं।।9।।

मुक्त जीवों में भेद नहीं

↓

आत्मिक सुख, ज्ञान, दर्शन, वीर्यादि- अनंत गुणों की अपेक्षा

मुक्त जीवों में कथंचित् भेद

	अनुयोग	प्रत्युत्पन्न नय (वर्तमान को ग्रहण करने वाला)	भूत नय (अतीत को ग्रहण करने वाला)
1.	क्षेत्र	*अपने आत्मप्रदेश *आकाश प्रदेश *सिद्ध क्षेत्र	* जन्म अपेक्षा - 15 कर्म भूमि * अपहरण अपेक्षा - अढ़ाई द्वीप
2.	काल	1 समय में	* विदेह में - सर्व काल * भरत - ऐरावत में -अवसर्पिणी के चौथे काल में -उत्सर्पिणी के तीसरे काल में उत्पन्न जीव ही सिद्ध होते हैं। ***हुण्डावसर्पिणी काल दोष की वजह से तीसरे काल में उत्पन्न जीव भी सिद्ध होते हैं।***
3.	गति	सिद्ध गति	* निकट - मनुष्य गति * दूर - चारों गति से आकर
4.	लिंग(वेद) -भाव	वेद रहित	* तीनों वेद
	- द्रव्य		* पुरुष वेद * [redacted] रूप [redacted]

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

	अनुयोग	प्रत्युत्पन्न नय (वर्तमान को ग्रहण करने वाला)	भूत नय (अतीत को ग्रहण करने वाला)
5	तीर्थ		* तीर्थंकर बनकर * इतर - तीर्थंकर के रहते - तीर्थंकर के अभाव में
6	चारित्र	चारित्र - अचारित्र के अभाव में	* निकट - यथाख्यात चारित्र * दूर - 5 चारित्र अथवा परिहार विशुद्धि के अलावा शेष 4 चारित्र
7	प्रत्येकबुद्ध बोधितबुद्ध		* प्रत्येक बुद्ध - स्वयं से ज्ञान प्राप्त करे * बोधित बुद्ध - दूसरे के उपदेश से ज्ञान प्राप्त करें
8	ज्ञान	केवलज्ञान	* 2 ज्ञान * 3 ज्ञान * 4 ज्ञान
9	अवगाहना	अंतिम शरीर से कुछ कम	* उत्कृष्ट - 525 धनुष * मध्यम - अनेक भेद * जघन्य - $3\ ^1/_2$ हाथ

1	अंतर	जघन्य - 1 समय उत्कृष्ट - 6 महीने
	अंतर अभाव (निरन्तर सिद्ध होने का काल)	जघन्य - 2 समय उत्कृष्ट - 8 समय
2	संख्या (एक समय में कितने जीव सिद्ध होते हैं)	जघन्य - 1 उत्कृष्ट - 108

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

अल्पबहुत्व (सिद्ध होने वाले जीवों की संख्या की तुलना)

	कम से ज्यादा ⟶
1. क्षेत्र	लवणसमुद्र < कालोदधि समुद्र < जम्बूद्वीप धातकी खण्ड द्वीप < पुष्करार्द्ध द्वीप
2. काल	उत्सर्पिणी < अवसर्पिणी < दोनों से रहित (विदेह क्षेत्र में परिवर्तन नहीं)
3. गति(भूत अपेक्षा) किस गति से आकर	तिर्यंच गति < मनुष्य गति < नरक गति < देव गति
4.लिंग(भूत अपेक्षा)	भाव नपुंसक वेद < भाव स्त्री वेद <भाव पुरुषवेद
5. तीर्थ	तीर्थंकर केवली < सामान्य केवली
6.चारित्र(भूत अपेक्षा)	5 चारित्र वाले < 4 चारित्र वाले
7.प्रत्येक-बोधितबुद्ध	प्रत्येक बुद्ध < बोधित बुद्ध
8.ज्ञान(भूत अपेक्षा)	2 ज्ञानधारी < 4 ज्ञानधारी < 3 ज्ञानधारी
9. अवगाहना	जघन्य अवगाहना < उत्कृष्ट अवगाहना < मध्यम अवगाहना
10. अंतर	6 माह के अंतर से <1 समय के अंतर से < मध्य के अंतर से
11. संख्या(1 समय में सिद्ध)	108 जीव < 107-50 जीव < 49-25 जीव < 24-1 जीव

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट - 1

ज्ञानावरण कर्म के आस्रव के विशेष कारण

1. सच्चे आचार्य तथा उपाध्याय से प्रतिकूलता रखना, 2. तत्त्वों में श्रद्धा नहीं रखना, 3. तत्त्वाभ्यास - तत्त्वश्रवण में आलस रखना, 4. अनादर पूर्वक शास्त्र का उपदेश सुनना, 5. धर्मतीर्थ - सच्चे उपदेश का लोप करना, 6. स्वयं को बहुश्रुतज्ञ मानकर अभिमान करना तथा मिथ्या उपदेश देना, 7. अन्य बहुश्रुत ज्ञानियों का अपमान करना, 8. असत्य प्रलाप तथा उत्सूत्र कथन करना, 9. लोभबुद्धि (धनार्जन, ख्यातिबुद्धि, पदवी प्राप्ति आदि) से शास्त्र लिखना और बेचना, 10. हिंसादि में प्रवर्तन करना।

दर्शनावरण कर्म के आस्रव के विशेष कारण

1. आँखें बिगाड़ देना - निकाल लेना, 2. अपनी दृष्टि का गर्व करना, 3. बहुत सोना, 4. दिन में सोना, 5. आलस्य स्वभाव रहना, 6. नास्तिकता का भाव रखना, 7. सम्यग्दृष्टि को दूषण लगाना, 8. अन्य मतों की प्रशंसा करना, 9. प्राणियों का घात करना, 10. सच्चे मुनियों की निन्दा करना।

असातावेदनीय के आस्रव के विशेष कारण

1. पर का अपवाद, विश्वासघात, चुगली, निंदा, 2. पर को दुःखी करना, निरर्थक दण्ड देना, 3. निर्दयता, अंगोपांग का छेदन-भेदन, ताड़न, त्रासन, तर्जन, भर्त्सना इत्यादि, 4. अपनी प्रशंसा करना, 5. संक्लेश प्रकट करना, 6. महा आरम्भ, महा परिग्रह धारण करना, 7. वक्रस्वभाव रखना, 8. पापकर्म से आजीविका करना, 9. विष मिलाना, जाल-पिंजरा-फाँसी आदि बनाना, 10.अन्य जीवों को पकड़ने - मारने के यन्त्रादि उपाय बताना, 11. खोटे प्रयोग सिखाने वाले शास्त्रों को दूसरों को देना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

चारित्रमोह के आस्रव के विशेष कारण

1. जगत का उपकार करने में समर्थ ऐसे शीलव्रतों की निन्दा करना 2. आत्मज्ञानी तपस्वियों की निन्दा करना, 3. धर्म का विध्वंस करना - धर्म के साधन में अन्तराय करना, 4. शीलवन्तों को शील पालन करने से चलायमान करना, 5. देशव्रती-महाव्रती जीवों को व्रतों से चलायमान करना, 6. मद्य-मांस-मधु के त्यागियों के चित्त में भ्रम उत्पन्न करना, 7. चारित्रवन्तों के चारित्र में दूषण लगाना, 8. क्लेशरूप लिंग - भेष धारना, क्लेशरूप व्रत धारना।

नौ नोकषायों के आस्रव के विशेष कारण

1. **हास्य** - मूर्खतापूर्ण हँसना, दीन-दुखी-अनाथों की हँसी करना, कामकथा और कामचेष्टा पूर्वक हँसना, बहुत व्यर्थ प्रलाप करना।

2. **रति** - दूसरे जीवों की विचित्र क्रीड़ा (कठिनता से किये जा सकनेवाले आगमानुकूल कार्य) में सहयोग पूर्वक तत्परता करना, उचित क्रिया को नहीं रोकना, अन्य का कष्ट दूर करना, अन्य देशों-विदेशों में उत्सुकतापने से देखने का भाव नहीं होना।

3. **अरति** - दूसरे जीवों के अरति उत्पन्न करना, दूसरों की कीर्ति नष्ट करना, पापी जीवों की संगति करना, खोटी क्रिया करने में उत्साह करना।

4. **शोक** - स्वयं को शोक होने पर दुखी होकर चिन्ता करना, दूसरों को दुख उत्पन्न करना, दूसरे को शोक में देखकर आनन्द मानना ।

5. **भय** - स्वयं भयरूप परिणाम रखना, दूसरों को भय उत्पन्न कराना, निर्दयता के परिणाम करके दूसरों को दुःख देना।

6. **जुगुप्सा** - सत्य धर्म को धारण करनेवाले चारों वर्ण - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कुल की क्रिया - आचार के प्रति ग्लानि रखना, दूसरों का अपवाद - निन्दा करने का स्वभाव होना।

7. **स्त्री वेद** - अति क्रोध के परिणाम, अति मानीपना, ईर्ष्या का व्यवहार, झूठ बोलने में हर्ष होना, अति मायाचार में तत्पर होना, अति रागभाव करना, पर स्त्री

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सेवन करना, पर स्त्री का रागभाव से आदर करना व स्व स्त्री के समान भाव से आलिंगन आदि करना।

8. पुरुष वेद - अल्प क्रोध, कुटिलता का अभाव, विषयों में उत्सुकता का अभाव, निर्लोभता, स्त्री के सम्बन्ध में अल्प राग होना, स्व स्त्री में सन्तोष रखना, ईर्ष्या का अभाव, स्नान-गन्ध-पुष्पमाला - आभरणादि में अनादरपना।

9. नपुंसकवेद - प्रबल क्रोध, मान, माया, लोभ के परिणाम, गुह्य इन्द्रिय का छेदना, अनंग क्रीड़ा करना, शीलवन्तों पर उपसर्ग करना, व्रती जीवों को दुःखी करना, गुणवानों की निन्दा करना, दीक्षा ग्रहण करने वालों को दुःख देना, परस्त्री के संगम का बहुत राग रखना, आचार रहित निराचारी होना।

नरकायु के आस्रव के विशेष कारण

1. मिथ्यादर्शन सहित आचरण करना, 2. अत्यधिक मान करना, 3. शिलाभेद के समान तीव्र क्रोध करना, 4. तीव्र लोभ के परिणाम करना, 5. निर्दयता के परिणाम रखना, 6. दूसरे जीवों को दुःख उत्पन्न करने के परिणाम रखना, 7. दूसरों का घात करने के परिणाम रखना, 8. दूसरों को बन्धन में होने का अभिप्राय रखना, 9. प्राणियों का घात करने वाला असत्य वचन कहना, 10. पर द्रव्य छीनने के परिणाम रखना, 11. मैथुन में अतिराग रखना, 12. अभक्ष्य भक्षण करना, 13. दृढ़ बैर रखना, 14. साधु की निन्दा करना, 15.तीर्थंकर की आज्ञा का विरोध करना, 16. कृष्ण लेश्या के परिणाम रखना, 17. रौद्र ध्यानपूर्वक मरण करना।

तिर्यंचायु के आस्रव के विशेष कारण

1. मिथ्याधर्म का उपदेश देना, 2. कपट-कूट-कुटिल कार्यों में तत्परता रखना,3. पृथ्वी रेखा के समान क्रोधीपना होना, 4. शीलरहितपना होना, 5. शब्दों द्वारा प्रवृत्ति करके तीव्र मायाचार करना, 6. दूसरे के भावों में भेद-विवाद-शत्रुता उत्पन्न कराना, 7.शब्दों का मिथ्या अर्थ करना, अति अनर्थ रूप विरुद्ध अर्थ

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

प्रकट करना, 8. मिलावट करना, 9. जाति, कुल, शील में दूषण लगाना, 10. विसंवाद में प्रीति रखना, 11. दूसरे के उत्तम गुणों को छिपाना, न रहनेवाले अवगुण प्रकट करना - कहना, 12.नील और कापोत लेश्या के परिणाम रखना, 13. आर्तध्यान पूर्वक मरण करना।

मनुष्यायु के आस्रव के विशेष कारण

1. मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानवान होना, 2. मिथ्यादर्शन सहित विनयवान होना, 3. सरल स्वभाव रखना, 4. सत्य आचरण में सुख मानना, 5. अपना सच्चा सुख प्रकट बतलाना, 6. अल्प और क्षणिक क्रोध रखना, 7.व्यवहार में सरलता रखना, 8. विशेष गुणी पुरुषों के साथ प्रिय व्यवहार रखना, 9. व्यवहार में सन्तोषभाव रखना तथा उसी में सुख मानना, 10. जीवों के घात से विरक्तता रखना, 11. कुकर्म से निर्वृत्त रहना, 12. सभी से मीठा अनुकूल बोलना, 13. स्वभाव में मधुरता होना, 14. व्यर्थ बकवाद नहीं करना, 15. लौकिक व्यवहार कार्यों से उदासीन रहना, 16. ईर्ष्यारहितपना रखना, 17. अल्प संक्लेशभाव रखना, 18. देव, गुरु और अतिथि आदि के लिए दान-पूजा के लिए अपना धन अलग रखना, 19. कापोत लेश्या और पीत लेश्या के परिणाम होना, 20. धर्मध्यान पूर्वक मरण करना।

देवायु के आस्रव के विशेष कारण

1. अपने आत्मा के कल्याणकारक मित्रों से सम्बन्ध रखना, 2. धर्म के स्थानों का सेवन करना, 3. सत्यार्थ धर्म का श्रवण करना, प्रशंसा करना, 4. धर्म की महिमा दिखाना, 5. तप में भावना रखना, 6. जल रेखा समान अति मन्द क्रोध होना।

अशुभ नामकर्म के आस्रव के विशेष कारण

1. मिथ्यादर्शन बनाये रखना, 2. पीठ के पीछे खोटा बोलना, 3. किसी के द्वारा मार्ग पूछने पर खोटा मार्ग ही सही बतलाना, 4. चित्त की अस्थिरता, 5.तौलने

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

के तराजू-बाँट खोटे रखना, 6. स्वर्ण-मणि-रत्नादि खोटे को सच्चे में मिला देना, 7. खोटी गवाही देना, 8. कपट की अधिकता करना, 9. दूसरों की निन्दा करना, 10. झूठ वचन बोलना, 11. दूसरे का धन ले लेना, 12. महा आरम्भ और महा परिग्रह के भाव करना, 13. अपने सुन्दर रूप-उज्ज्वल भेष का गर्व करना, 14. अपने आभूषण, रूप आदि का मद करना, 15. कठोर-निंद्य-असत्य प्रलाप करना, 16. क्रोध और ढीठता के वचन कहना, 17. अपना सौभाग्य चाहना, 18. अन्य जीवों को कौतुहल उत्पन्न कराना, 19. आभूषण-वस्त्रादि पहनने में बहुत शौक - अनुराग रखना, 20. जिनमन्दिर के चन्दन-गन्ध-पुष्पमालादि-धूपादि की चोरी करना, 21. हँसी उड़ाना, 22. ईंट पकाने का कार्य करना, 23. दावाग्नि लगाने का कार्य करना, 24. प्रतिमा का नाश तथा मन्दिर का नाश करना, 25. मनुष्य-तिर्यंचों के सोने-बैठने के स्थान को मल-मूत्रादि से बिगाड़ देना, 26. बाग-बगीचा-वन का विनाश करना, 27. क्रोध-मान-माया-लोभ की तीव्रता रखना, 28. पापकर्म से आजीविका करना।

नीच गोत्रकर्म के आस्रव के विशेष कारण

1. जाति, कुल, बल, रूप, ज्ञान, आज्ञा, ऐश्वर्य और तप का मद करना, 2. दूसरों की अवज्ञा करना, 3. दूसरों की हँसी करना, 4. अपवाद करने का स्वभाव रखना, 5. धर्मात्मा पुरुषों की निन्दा करना, 6. अपनी उच्चता दिखाना, 7. दूसरों के यश को बिगाड़ देना, 8. अपनी असत्य कीर्ति प्रकट करना, 9. गुरुओं का तिरस्कार करना, 10. गुरुओं के दोष प्रकट करना, 11. गुरुओं का स्थान बिगाड़ना - अपमान करना, 12. गुरुओं को कष्ट उत्पन्न कराना, अवज्ञा करना, गुणों को लोपना, 13. गुरुओं को हाथ नहीं जोड़ना, स्तुति नहीं करना, गुण प्रकाशित नहीं करना, उन्हें देखकर खड़े नहीं होना, 14. तीर्थंकर आदि की आज्ञा का लोप करना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

उच्च गोत्रकर्म के आस्रव के विशेष कारण

1. दूसरों से जाति, कुल, रूप, बल, वीर्य (आज्ञा), विज्ञान, ऐश्वर्य और तप में स्वयं अधिक विशेषता वाला हो तो भी अपने को उच्च नहीं समझना, 2. अन्य जीवों की अवज्ञा नहीं करना, 3. अन्य जीवों से उद्धतपना छोड़ना, 4. दूसरों की निन्दा-ग्लानि-हास्य-अपवाद करना छोड़ना, 5. अभिमान रहित होकर रहना, 6. धर्मात्मा जनों का आदर-सत्कार करना, 7. देखते साथ ही उठ खड़े होना, हाथ जोड़ना, नम्रीभूत रहना, वन्दना करना, 8. इस काल में जो गुण दूसरों को प्राप्त होना दुर्लभ हैं, वे गुण अपने में होते हुए भी उद्धतपना नहीं करना, 9. अपना माहात्म्य प्रकट नहीं करना, 10. धर्म के कारणों में परम हर्ष करना।

अन्तरायकर्म के आस्रव के विशेष कारण

1. कोई ज्ञानाभ्यास कर रहा हो उसमें बाधा पहुँचाना, 2. किसी का सत्कार हो रहा हो, उसे बिगाड़ देना, 3. दान-लाभ-भोगोपभोग-वीर्य-स्नान-विलेपन-इत्र-फुलेल-सुगन्ध-पुष्पमाला आदि में विघ्न करना, 4. वस्त्र-आभरण-शैया-आसन-भक्षण करने योग्य भोजन, पीने योग्य पेय, आस्वादन योग्य लेह्य इत्यादि में दुष्ट भावों से विघ्न करना, 5. वैभव - समृद्धि देखकर आश्चर्य करना, 6. अपने पास धन होने पर भी खर्च नहीं करना, 7. धन की अत्यधिक वांछा करना, 8. देवता को चढ़ाई गई वस्तु (निर्माल्य) को ग्रहण करना, 9. निर्दोष उपकरण का त्याग कर देना, 10. दूसरों की शक्ति-वीर्य का विनाश कर देना, 11. धर्म का छेद करना, 12. सुन्दर आचार के धारक तपस्वी गुरु का घात करना, 13. धर्म के आयतन तथा जिन प्रतिमा की पूजा को बिगाड़ देना, 14 त्यागी-दीक्षित को तथा दरिद्री-अनाथ-दीनों को कोई वस्त्र-पात्र-स्थान आदि देता हो, उसका निषेध करना, 15. दूसरे को बन्दीगृह में रोकना - बाँधना, 16. किसी का गुह्य अंग छेदना, 17. कान-नाक-ओष्ठ को काटना, 18. जीवों को मारना।

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

परिशिष्ट-2

पाठांतर

पृष्ठ	प्रथम पाठ	द्वितीय पाठ
41	**चरमोत्तम शब्द के अर्थ-**	
	उसी भव से मोक्ष जाने वाले (सर्वार्थसिद्धि-अध्याय 2, सूत्र 53)	तीर्थंकर (तत्त्वार्थ वृत्ति-अध्याय 2, सूत्र 53)
61	**अंत का आधा स्वयंभूरमण द्वीप एवं स्वयंभूरमण समुद्र में कौन-सा काल है-**	
	दु:षम (पंचम) काल तुल्य (त्रिलोकसार-गाथा 884)	चतुर्थ काल (वृहद्-द्रव्यसंग्रह-गाथा 35 श्री ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका)
77	**शुक्र-महाशुक्र (9-10) स्वर्ग में भाव लेश्या-**	
	पद्म और शुक्ल (सर्वार्थसिद्धि -अध्याय 4, सूत्र 22)	पद्म (गोम्मटसार जीवकाण्ड-गाथा 534-535)
81	**लौकान्तिक देवों की कुल संख्या-**	
	407820 (त्रिलोकसार-गाथा 537-538)	407806 (राजवार्तिक- अध्याय 4, सूत्र 25)
198	**चार प्रकार का आहार-**	
	खाद्य, पेय, लेह्य, स्वाद्य	अन्न, पान, खाद्य, लेह्य (रत्नकरण्ड श्रावकाचार -श्लोक 142)

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पृष्ठ	प्रथम पाठ	द्वितीय पाठ
203	**जघन्य अंतर्मुहूर्त का प्रमाण-**	
	1 आवलि 1 समय (गोम्मटसार जीवकाण्ड, संस्कृत टीका जीवतत्त्व-प्रदीपिका- गाथा 575)	आवली का एक असंख्यात भाग (यह पाठ भी वहीं दिया है)
206	**धर्म्यध्यान कौन से गुणस्थान में होता है-**	
	यथायोग्य 4 से 7 में (वृहद् द्रव्य संग्रह-गाथा 48 श्री ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका)	4 से 10 में (धवला जी-पुस्तक 13, पृष्ठ 74)
208	**पृथक्त्व वितर्क वीचार शुक्ल ध्यान कौन - से गुणस्थान में होता है-**	
	8 से 11 में (वृहद् द्रव्य संग्रह- गाथा 48 श्री ब्रह्मदेव कृत संस्कृत टीका)	11 में (धवला जी- पुस्तक 13, पृष्ठ 78)
78	**सौधर्मादि सोलह स्वर्गों के देवों के शरीर की उत्कृष्ट ऊँचाई (हाथ में)-**	

स्वर्ग	**सर्वार्थसिद्धि** अध्याय 4, सूत्र 21	**त्रिलोकसार** गाथा 543	**तिलोयपण्णत्ती** गाथा 565
सौधर्म-ऐशान	7	7	7 व 6
सानत्कुमार-माहेन्द्र	6	6	5 व 4
बह्म-ब्रह्मोत्तर	5	5	3.5
लांतव-कापिष्ठ	5	5	3.5
शुक्र-महाशुक्र	4	4	3.5
शतार-सहस्रार	4	3.5	3.5
आनत-प्राणत	3.5	3	3
आरण-अच्युत	3	3	3

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

सम्मतियाँ

* पण्डित किशनचन्दजी जैन, अलवर

पुस्तक को कई बार बारीकी से पढ़ा। पढ़कर विदित होता है कि आपको इतनी छोटी उम्र में भी जैन तत्त्वज्ञान का कितना गहन अध्ययन है। आपने जो लिखा है कि 'नई पीढ़ी तालिकाओं एवं रेखाचित्रों के माध्यम से विषय-वस्तु को सरलता से शीघ्र ग्रहण कर लेती है।' मैं आपके इस विचार से शत-प्रतिशत सहमत हूँ। वैसे तो तत्त्वार्थ सूत्र पर अनेक महान आचार्य एवं विद्वानों द्वारा अनेक टीकाएँ छपी हुई मिलती हैं। लेकिन जो कमी उनमें थी, वह इस तत्त्वार्थ सूत्र की पुस्तक से पूरी हो जाती है। इसमें आपने कितनी मेहनत की है, यह इस पुस्तक के पढ़ने से भली-भाँति विदित होता है।

आपने (पति-पत्नी) जो इतनी छोटी उम्र में अमेरिका के इतने बड़े पैकेज तथा ग्रीन कार्ड को भी छोड़कर निवृत्ति ली है, वह भी एक आदर्श है। आज के इस भौतिक युग में जहाँ रुपये की ही प्रधानता है, वहाँ उसको ठोकर मार दी। इससे विदित होता है कि आप दोनों अति निकट भव्य हैं तथा आपको इस त्याग का फल सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र की भी शीघ्रता से प्राप्ति होगी।

आप दोनों जो तत्त्व-अभ्यास में लगे हुए हैं। साथ ही अपना ही नहीं, अन्य तत्त्वपिपासुओं को भी पथ प्रदर्शन में सहयोगी बन रहे हैं। यह भी एक परम हर्ष का विषय है।

- किशनचन्द जैन

* ब्रह्मचारी संदीपजी 'सरल', अनेकान्त ज्ञान मंदिर, शोध संस्थान, बीना (म.प्र.)

अभी तक तत्त्वार्थसूत्र ग्रन्थ पर अनेकों टीकाएँ तैयार हुई हैं, प्रकाशन भी अनेक स्थलों से हुआ है, किन्तु यह प्रकाशन अपने आप में हटकर है। रेखाचित्र एवं तालिकाओं के साथ आपने जो विवेचना की है, स्वाध्यायी के लिए अत्यंत उपादेय है। अध्येता बिना किसी के आलम्बन से स्वयं विषय को हृदयंगम कर

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेगा। आपके इस उत्तम प्रयास के लिए कोटिशः धन्यवाद देते हुए अपेक्षा करते हैं कि आप इसी प्रकार कुछ नया प्रकाशन शीघ्र करायेंगी।

- ब्र. संदीप 'सरल'

*** डॉ. वीरसागरजी जैन, विभाग प्रमुख, जैनदर्शन विभाग, श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठ, नई दिल्ली**

भारतीय प्राच्य विद्याओं के महामेरु पद्मभूषण प्रो. सत्यव्रत शास्त्री ने एक बार कहा था कि जैनदर्शन को भलीभाँति समझने के लिए प्रत्येक व्यक्ति को दो ग्रन्थों का अध्ययन अवश्य करना चाहिए- 1. तत्त्वार्थसूत्र और 2. समयसार। ठीक ही है, जैन आगम और अध्यात्म के मूल आधारभूत इन दो ग्रन्थों के गहन अध्ययन से सम्पूर्ण जैनदर्शन का प्रतिपाद्य हृदयंगम किया जा सकता है। जैनदर्शन के जिज्ञासु को इधर-उधर से ध्यान हटाकर उक्त दो ग्रन्थों पर अपना ध्यान मुख्य रूप से केन्द्रित करना चाहिए।

श्रीमती पूजा-प्रकाश छाबड़ा ने तत्त्वार्थसूत्र को ही भलीभाँति समझाने के लिए उसे रेखाचित्रों और तालिकाओं के माध्यम से प्रस्तुत किया है। मैं समझता हूँ कि इसमें उन्हें बहुत परिश्रम करना पड़ा होगा, परन्तु इससे ग्रन्थ की विषय-वस्तु अत्यधिक सरल-सुबोध बन गई है। साधारण से साधारण व्यक्ति भी इससे तत्त्वार्थसूत्र का गूढ़-गंभीर विषय आसानी से समझ सकेगा। लेखिका एवं प्रकाशक - दोनों ही कोटिशः साधुवाद के पात्र हैं।

- वीरसागर जैन

*** श्री कुमुदचन्दजी सोनी, प्रतिष्ठाचार्य, परम मुनिभक्त, कर्मठ कर्मयोगी, दिगम्बर जैन महासभा के केन्द्रीय संयुक्त महामंत्री, अजमेर (राज.)** **4/3/10**

मैं सर्वप्रथम आपको बहुत-बहुत साधुवाद एवं बधाईयाँ देना चाहूँगा कि आपने तत्त्वार्थसूत्र कथित तत्त्वार्थों को भलीभाँति भावभासन पूर्वक जानकर-समझकर इसे रेखाचित्र एवं तालिकाओं के माध्यम से अभिनव, सर्वग्राह्य सुगम अभिव्यक्ति प्रदान की है। आपका श्रम सार्थक है। आधुनिक उच्चशिक्षित वर्ग

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

को यह रचना बहुत पसंद आयेगी, क्योंकि रेखाचित्र एवं तालिकाओं के माध्यम से समझना-समझाना आज इस वैज्ञानिक युग की भाषा बन चुकी है।

- कुमुदचन्द सोनी

* **डॉ. उत्तमचन्दजी जैन, सेवा नि. प्राचार्य-नेहरु वार्ड, सिवनी(म.प्र.)**

"तत्त्वार्थसूत्र(रेखाचित्र एवं तालिकाओं में)" एक नवोदित पुस्तक प्राप्त हुई। पुस्तक का बाह्यभाग (गेट अप) एकदम नया, आकर्षक, तालिकामय प्रतीत हुआ। मैंने उक्त पुस्तक ध्यानपूर्वक आद्योपान्त पढ़ी एवं पाया कि तत्त्वार्थसूत्र की क्लिष्ट विषय-वस्तु नवीन पीढ़ी के लिए सरल, सुगम एवं सहजग्राह्य बनाने में आपका प्रयास पूर्णतः सफल रहा है। आपका प्रयास आपकी तत्त्वरसिकता, तत्त्वपिपासा एवं तत्त्वप्रेम को व्यक्त करता है।

विभिन्न रेखचित्रों एवं तालिकाओं द्वारा सूत्र का अभिप्राय एवं अर्थ एक नजर में ज्ञात होता है। तत्त्वज्ञान के प्रचार प्रसार हेतु आपका अभिनव प्रयास सराहनीय है। इस कार्य हेतु हमारी आपके लिए शुभकामनाएँ हैं। आपकी रुचि उत्तरोत्तर जिनागम के गूढ़तम-आत्मकल्याणकारी रहस्यों को जानकर स्व-पर हित में लगी रहे - यही भावना है।

- उत्तमचन्द जैन

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

लेखिका-परिचय

श्रीमती पूजा छाबड़ा

आयु		32 वर्ष
लौकिक शिक्षा		एम. ए. सी. पी. ए. (सर्टीफाइड प्रोफेशनल अकाउंटेण्ट) वाशिंगटन स्टेट, अमेरिका
भूतपूर्व कार्य क्षेत्र	:	प्रोफेशनल अकाउंटेण्ट बेडर मार्टिन, पी. एस., सिएटल, अमेरिका
पति	:	**श्री प्रकाश छाबड़ा** बी. ई.(मेकेनिकल), एम.एस. (कम्प्यूटर साइंस), अमेरिका भूतपूर्व-सॉफ्टवेयर इंजीनियर, माइक्रोसॉफ्ट कॉरपोरेशन, वाशिंगटन स्टेट, अमेरिका

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org

पाँच पाप

हिंसा (असावधानी-प्रमाद पूर्वक प्राणों का वियोग-घात करना)

झूठ (अयत्नाचार-प्रमाद सहित अप्रशस्त [दुख

चोरी (बिना दी हुई वस्तु

अब्रह्म (रति जन्य सुख के लिए

परिग्रह (पर द्रव्य में ममत्व परिणाम)

जीव

* समरम्भ
* समारम्भ
* आरम्भ

कुल =3 x 3

विनय: दर्शन, ज्ञान, चारित्र, उपचार

व्रत: निश्चय व्रत, व्यवहार व्रत

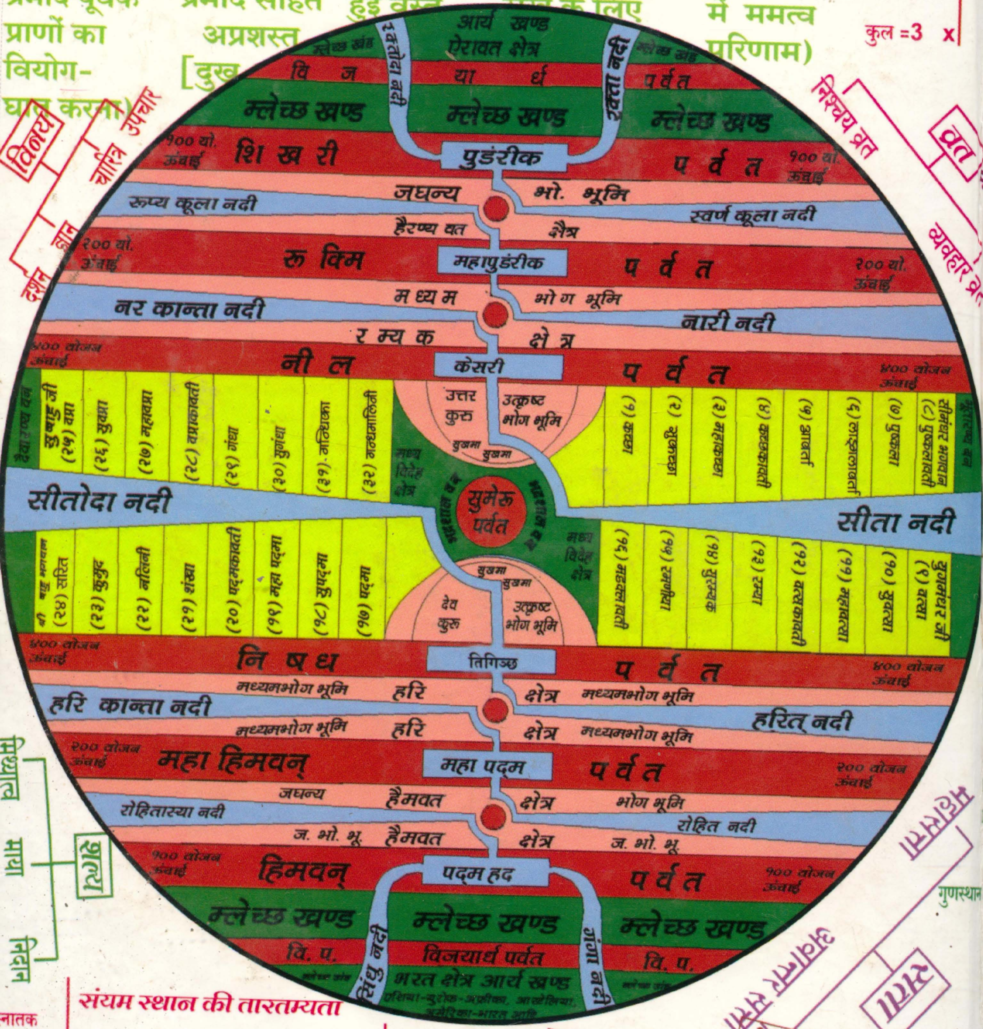

शल्य: मिथ्यात्व, माया, निदान

संयम स्थान की तारतम्यता

निर्ग्रंथों के भेद: स्नातक, निर्ग्रंथ, प्रतिसेवना, बकुश, कषाय कुशील, पुलाक

एक ही

ज उ

जघन्य — संयमस्थान — उत्कृष्ट

इन्द्रिय

- द्रव्येन्द्रिय
  - निर्वृत्ति (इन्द्रियाकार रचना)
  - उपकरण (निर्वृत्ति का उपकार करे)
- भावेन्द्रिय
  - लब्धि (ज्ञानावरणीय कर्म का क्षयोपशम)
  - उपयोग (चेतना का परिणामविशेष)

गुणस्थान: 1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14

देवों के प्रकार (नि

नाम	भवनवासी	व्यंतर	ज्यो
स्वरूप	जो भवनो में निवास करते हैं	जिनका नाना प्रकार के देशों में निवास है	जो ज... में निव...
भेद	10	8	

Jain Education International For Personal & Private Use Only www.jainelibrary.org